VISHWA - Hindi Literary Magazine

PRINTED VISHWA - ISSN 25721550
ONLINE e-VISHWA - ISSN 25721569

International Hindi Association
अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति

JULY 2025

विश्वा

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की त्रैमासिक मुख पत्रिका

वर्ष 41 ◆ अंक 3 ◆ जुलाई 2025

22 वाँ द्विवार्षिक अधिवेशन (2-3 मई 2025) विशेष परिशिष्ट सहित

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति द्वारा आयोजित 22वें अधिवेशन की झलकियाँ

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की त्रैमासिक मुख पत्रिका

विश्वा

प्रकाशन त्रैमासिक – जनवरी, अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर
Published Quarterly – January, April, July, October

प्रबन्ध सम्पादक - **श्री आलोक मिश्रा**
Managing Editor - **Mr. Alok Misra**
New Hampshire, U.S.A.
ई-मेल - alok.misra@hindi.org
दूरभाष - 603-681-9150

रमेश जोशी, प्रधान सम्पादक
Mr. Ramesh Joshi, Chief Editor
Email – joshikavirai@gmail.com
editor@hindi.org

श्रीमती अर्चना पांडा, डिजीटल मीडिया एडिटर
Mrs. Archana Panda, Digital Media Editor
Email – panda_archana@yahoo.com

भारती मिश्र, संकलन, संपादन सहयोग
Bhati Mishra, Collection, Co-editor
Email – batua896@gmail.com

यदि आप चाहते हैं कि आपके मित्रगण भी विश्वा पढ़ें, विश्वा से जुड़ें तो हमें उनका ई मेल का पता उपलब्ध करवा दें जिससे हम उन्हें विश्वा की पीडीएफ़ भिजवा सकें। संपर्क – mail@hindi.org

विश्वा के लेखकों से

1. एक बार में दो से ज्यादा प्रविष्टियाँ न भेजें।
2. रचनाओं में एक पक्षीय, कट्टरतावादी, अवैज्ञानिक, साम्प्रदायिक, रंग-नस्लभेदी, अतार्किक, अन्धविश्वासी, अफवाही और प्रचारात्मक सामग्री से परहेज करें। सर्वसमावेशी और वैश्विक मानवीय दृष्टि अपनाएँ।
3. अपनी रचना की प्रूफ रीडिंग करके भेजें। वर्तनी (Spelling) के लिए हम जिम्मेदार नहीं होंगे। इससे रचना की गुणवत्ता भी संदेहास्पद हो जाती है।
4. रचना एरियल यूनिकोड MS या मंगल फॉण्ट (12) में भेजें।
5. पेज पर सिर्फ रचना का नाम और रचना ही लिखें। रचना छपने लायक फॉर्मेट में भेजें।
6. रचनाएँ एक से अधिक हों तो अलग-अलग word और pdf document में भेजें।
7. अपने बायो डेटा में डाक का पता, ईमेल, फोन नंबर ज़रूर भेजें। हाँ, ये सूचनाएँ उतनी ही छापी जायेंगी जितना आप चाहेंगे लेकिन हमारी जानकारी के लिए ये आवश्यक हैं। यदि आपकी पुस्तकें प्रकाशित हैं तो उनका विधा सहित उल्लेख भी करें। अपने बायोडाटा को word और pdf document में भेजें।
8. अपनी पासपोर्ट साइज़ तस्वीर अलग से भेजें। रचना के साथ अप्रकाशित और मौलिक होने का प्रमाणपत्र भी संलग्न करें।
9. रपट, रचना, समाचार के साथ के फोटो 250px तक होनी चाहिए।
10. 'विश्वा' के लिए भेजी गई रचना दो महिने तक कहीं न भेजें।
11. इंटरनेट की सुविधा का दुरुपयोग करते हुए एक ही रचना पचासों पत्रिकाओं में भेजकर अपनी और हमारी प्रतिबद्धता को सस्ता न बनाएँ।
12. प्रवासी अपने यहाँ की किसी व्यक्तिगत उपलब्धि तथा सांस्कृतिक, साहित्यिक और सामाजिक हलचलों की सचित्र-प्रामाणिक जानकारियाँ उचित तरीके से भेज सकते हैं।
13. यदि छंद का ज्ञान नहीं है तो कोई बात नहीं लेकिन यदि छंद में लिखें तो उसके अनुशासन का पूरा पालन करें।
14. हिन्दी से इतर भाषाओं के जीवन मूल्यों और मानवीय गरिमा से संपन्न रचनाओं का अनुवाद भी भेज सकते हैं। ऐसे में जहाँ मूल लेखक से अनुमति आवश्यक हो तो वह भी संलग्न करें।
15. पुस्तक की समीक्षा के लिए दो प्रतियाँ भेजें। हस्तलिखित, स्केनिंग और पीडीऍफ़ वाली सामग्री का उपयोग हम नहीं कर सकेंगे।
16. किसी भी रचना पर किसी प्रकार के मानदेय का कोई प्रावधान नहीं है।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनका अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की रीति-नीति से कोई संबंध नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association

संस्थापक - डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह
Founder – Dr. Kunwar Chandraprakash Singh

बोर्ड के सदस्य / Board of Trustees

श्री तरुण सुरती (TN) अध्यक्ष, न्यासी समिति
Mr. Tarun Surti, Chairman 615-812-6164 tarunsurti@yahoo.com

श्री आलोक मिश्र (NH)
Mr. Alok Misra 603-681-9150 alok.iha@gmail.com

डॉ. रवि प्रकाश सिंह (TN)
Dr. Ravi Prakash Singh 615-785-7888 ngdsdg@gmail.com

श्री स्वप्न धैर्यवान (TX)
Mr. Swapan Dhairyawan 281-382-0348 swapandha@yahoo.com

श्री इंद्रजीत शर्मा (NY)
Mr. Inderjeet Sharma 917-273-9744 guru.richmondhill@gmail.com

कार्याधिकारी / Executive Officers

डॉ. शैल जैन (OH) अध्यक्ष
Dr. Shail Jain, President 330-421-7528 president@hindi.org

श्री संजीव जायसवाल (TX) सचिव
Mr. Sanjeev Jaiswal, Secretary 508-369-7639 secretary@hindi.org

श्री चन्द्रकांत पटेल (TX) कोषाध्यक्ष
Mr. Chandrakant Patel, Treasurer 832-423-7979 treasurer@hindi.org

कार्यकारी समितियाँ Committees Chairs

प्रौद्योगिकी / Technology

श्री संजीव जायसवाल
Mr. Sanjeev Jaiswal (TX) 508-369-7639 secretary@hindi.org

श्री उमेश कुमार
Mr. Umesh Kumar (TN) 615-870-7088 umeshkharwar79@gmail.com

हिन्दी शिक्षण / Hindi Education

डॉ. राकेश कुमार
Dr. Rakesh Kumar (IN) 317-730-4086 arksri@yahoo.com

श्रीमती किरण खेतान
Mrs. Kiran Khaitan (OH) 330-622-1377 kirankhaitan@yahoo.com

निधि संग्रह / Fundraising

डॉ. शोभा खंडेलवाल
Dr. Shobha Khandelwal (OH) 330-421-6638 shobhakhandelwal@gmail.com

शाखा समन्वय / Chapter coordination

श्रीमती अनीता सिंघल
Mrs. Anita Singhal (TX) 817-319-2678 anitagsinghal@gmail.com

सदस्यता / Membership

चौधरी प्रताप सिंह
Choudhari Pratap Singh (MD) 202-413-5918 chpratapsingh1008@gmail.com

विश्वा / श्री रमेश जोशी
Vishwa / Mr. Ramesh Joshi (India) 91-94601-55700 joshikavirai@gmail.com

संवाद / डॉ. शैल जैन
Samvad Newsletter / Dr. Shail Jain 330-421-7528 president@hindi.org

शाखा संयोजक, Chapter Presidents USA

श्री अश्विनी भारद्वाज
Mr. Ashwani Bhardwaj NE Ohio 216-926-7890 ashwani_69@yahoo.com

श्रीमती वीणा शर्मा
Mrs. Veena Sharma Dallas, TX 214-455-6592 mohan_veena@yahoo.com

श्री सौंदर्य (संजय) सोहोनी
Mr. Saundarya Sohoni Houston 281-943-9758 saundaryasohoni@gmail.com

श्रीमती कमला पंचाल
Mrs. Kamla Panchal New York, NY 516-279-6612 kamlapanchal@aol.com

सुश्री सीमा वर्मा
Ms Seema Verma Nashville, TN 904-525-1795 call.seema@gmail.com

चौधरी प्रताप सिंह
Choudhary Pratap Singh MD 202-413-5918 chpratapsingh1008@gmail.com

डॉ. बबिता श्रीवास्तव
Dr. Babita Srivastava New Jersey, NJ 908-892-6133srivastava.babita@yahoo.com

श्री विरेश सिंह
Mr. Viresh Singh Philadelphia,PA 484-425-7734vireshsingh999@gmail.com

श्रीमती विद्या सिंह
Mrs. Vidya Singh Indiana 317-514-6857 ihaindiana@gmail.com

शाखा संयोजक, Chapter Presidents India

श्रीमती मुन्ना जगेतिया Hyderabad
Mrs. Munna Jagetia A.P., Telangana 91-94901-89715 munnaop@gmail.com

डॉ. मनमोहन शुक्ला
Dr. Manmohan Shukla Prayagraj, UP 91-83407-10237 shukla.mm.147@gmail.com

डॉ. शोभारानी सिंह Bihar
Dr. Shobharani Singh Jharkhand 91-99393-92605 drshobharani.vama@gmail.com

श्री अशोक लव
Mr. Ashok 'Lav' Delhi, NCR 91-89206-08821 kumar1641@gmail.com

डॉ.(प्रो.) ओम प्रकाश तिवारी
Dr. (Prof.) Om Prakash Tiwari Maharastra 91-96511-23803 optiwari9651@gmail.com

मुद्रण एवं प्रस्तुति :

अनुज्ञा बुक्स

(पुस्तक प्रकाशक, विक्रेता और मुद्रक)

1/10206, LANE NO. 1E, WEST GORAKH PARK, SHAHDARA, DELHI-110032

CELL/WhatsApp 07291920186, 09350809192 • e-mail: anuugyabooks@gmail.com

salesanuugyabooks@gmail.com • www: anuugyabooks.com

अनुक्रम

सम्पादकीय	सकल पदारथ हैं जग माहीं	5
विशेष आलेख	संस्कृति-संगम –*रामधारी सिंह दिनकर*	6
हिन्दी दिवस पर विशेष	वैश्विक युग में हिन्दी भाषा : एक नई दिशा की ओर–*डॉ. राकेश कुमार*	10
विशिष्ट श्रृंखला : ज्ञानपीठ पुरस्कार 1982	महादेवी वर्मा –*डॉ. दीपक पाण्डेय*	14
कथा-कहानी : एक लघुकथा	जाँच का परिणाम –*मनीष*	17
प्रासंगिक	ग्रोक : जिल्ले इलाही का बीरबल –*राकेश अचल*	18
वैचारिक आलेख	सृजन-समय-समालोचना –*डॉ. रोहिणी अग्रवाल*	19
भारत की खोज : दो	*पंडित जवाहरलाल नेहरू*/अनुवाद-संक्षिप्तीकरण- सौजन्य : डॉ. *निर्मला जैन*	21
	सिंधु घाटी सभ्यता	21
	आर्यों का आना	21
	प्राचीनतम अभिलेख, धर्म-ग्रंथ और पुराण	22
	वेद	23
	भारतीय संस्कृति की निरंतरता	23
	उपनिषद्	23
	व्यक्तिवादी दर्शन के लाभ और हानियाँ	24
	भौतिकवाद	24
कथा-कहानी	अधजले ठुड्डे –*डॉ. हंसादीप*	25
	नींव के पत्थर : नानी गोपाल मुखोपाध्याय –*जयंत गुप्ता*	27
युग-परिवर्तन का एक विशिष्ट बिन्दु : आलेख	कृषि-संस्कृति की समाधि –*डॉ. अमरनाथ*	28
	रामपुर के बहाने : डॉ. अमरनाथ	28
ज्ञान-विज्ञान	हमारी इस धरती से आगे –*चंद्रभूषण*	31
सरोकार	बदलती भारतीय सामाजिक संरचना की चुनौतियाँ –*डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल*	...33
बधाई एक कविता के साथ	हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था –*विनोद कुमार शुक्ल*	9
बधाई	*पार्वती तिर्की* और *सुशील शुक्ल* अकादमी पुरस्कार के लिए	13
	फैजान ज़की, ओपाल सुचाता चुआंगश्री	17
	बानू मुश्ताक	41
	गीत गाते हुए लोग : पार्वती तिर्की की एक कविता	13
एक कविता : हारे हुए लोग	*दिनेश श्रीनेत*	32
एक ग़ज़ल	*रसिक देहलवी*	34
	सामयिक : शांति-वार्ता –*कुँवर नारायण*	34
प्रसंग	लोकमंगल के कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर –*वेदव्यास*	35
दो बहादुर और विवेकशील महिलाएँ	ललिता रामदास का हिमांशी नरवाल को खुला पत्र	36
विचार	एशिया ही युद्ध का मैदान क्यों –*डॉ. सुधा कुमारी*	37
पुस्तकें	कम ज्ञात कोनों में झाँकती एक किताब : प्लेसिबो	38
	ग़ज़ल-दस्ता –*अशोक सिंह*	39
एक चर्चित किताब की चर्चा	हे प्रभु! तुम एक बार स्त्री बनना –*डॉ. रंजना अरगडे*	40
विशेष आलेख	डाक टिकटों के आईने में वैश्विक राम– *कृष्ण प्रसाद यादव*	42
हलचल	भरत मुनि का नाट्यशास्त्र	9
	अमेरिकी धरती पर हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति का भव्य उत्सव	44
	इस अंक के आवरण पृष्ठ	47
	श्रद्धांजलि और सलाम	48

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association
A 501(c)(3) Non-profit Organization ● 2129 Stratford Road, Murfreesboro, TN 37129, U.S.A. ● Founded in 1980
www.hindi.org

MEMBERSHIP FORM

Please fill out all questions on the form clearly, sign, and return it via email to: **treasurer@hindi.org**, or via mail to: Treasurer, 5907 Majestic Pines Dr, Kingwood, TX 77345, USA. You may print the form, sign, and email a camera image.

Membership fee is nonrefundable. Associate Life members enjoy same benefits as regular Life members, except for voting rights. All members get: 1) Digital Vishwa magazine quarterly, and Samvad newsletter monthly. 2) Discounts on IHA products, services, and events. 3) Volunteer opportunities in US and India. 4) Early notifications.

Title: ☐Mr. ☐Mrs. ☐Ms. ☐Dr. ☐Prof. **Date:** ______________________

First Name: ______________________ **Last Name:** ______________________

Email ID: ______________________ **Mobile Number:** ______________________

Street Address: ____

City: ______________________ **State:** ______________________

Postal Code: ______________________ **Country:** ______________________

Spouse's Name: (optional) ……………………………………………………………………………..

Membership: Select one ☐ Life Member $250 USD ☐ Associate Life Member $150 USD

☐ Annual Member $35 USD ☐ Institutional Annual Member $75 USD

Please make check payable to 'International Hindi Association' in USD and mail to above-mentioned address. *Or* ***Pay Online***

Do you wish to receive paper copy of Vishwa magazine, please check here: ☐

There could be a (USD $15/year) printing & mailing charge in the future.

Specimen Signature:
Print or Insert photo of your Signature

Would you like to be a part of the Leadership Team and volunteer in your area of interest or expertise ?

(Check all that apply)

- ☐ Hindi/English Content Writing
- ☐ Information Technology, Website
- ☐ Social media, Digital Marketing
- ☐ Fundraising, Sponsorships
- ☐ Public/Government Relations
- ☐ Hindi Education
- ☐ Graphics, Video
- ☐ Organization
- ☐ Legal, Compliance
- ☐ Sales, Support
- ☐ Other (please specify): ______________________________

'Vishwa' welcomes original writings in Hindi from all quarters. Writings dealing with immigrant experiences are especially welcome. For further information, or to submit your writings for consideration, please contact: The Editor, Mr. Ramesh Joshi, Phone USA +1 (330) 688-4927, India +91 94601 55700; Email: joshikavirai@gmail.com or editor@hindi.org

सम्पादकीय

सकल पदारथ हैं जग माहीं

कर्म और करम में तत्सम और तद्भव का ही अंतर है और अधिकतर इनका प्रयोग समान अर्थ में ही किया जाता है लेकिन कभी कभी ये दोनों शब्द-रूप कवि की व्यक्तिगत शैली और भंगिमा तथा लोक प्रयोग के कारण भिन्न और विपरीत अर्थ भी दे देते हैं। जैसे–

सकल पदारथ हैं जग माहीं
करमहीन नर पावत नाहीं। –तुलसी

यहाँ करम का अर्थ 'कर्म' अर्थात काम, मेहनत, अध्यवसाय, प्रयत्न है। लेकिन

करम गति टारे नाहिं टरी
मुनि वशिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोध के लग्न धरी
दसरथ मरण हरण सीता को बन में बिपत परी। –कबीर

में 'करम' का अर्थ भाग्य निकलता है।

गीता में तीन योग बताए गए हैं– ज्ञान, भक्ति और कर्म। ज्ञान और भक्ति कर्म का अर्थ समझने और कर्म करने के लिए हैं। यदि कर्म नहीं हैं तो ज्ञान और भक्ति का कोई अर्थ नहीं। फिर तो ज्ञान और भक्ति आडंबर हैं और भले और भोले लोगों को मूर्ख बनाकर उनका शोषण करना है।

इस संसार में सभी पदारथ हैं। राजस्थानी में जब किसी चीज को बहुत महत्वपूर्ण बताया जाता है तो 'पदारथ' कहा जाता है– इसो के पदारथ है (ऐसा क्या पदार्थ है?)। नश्वर संसार के तुच्छ भौतिक पदार्थों में 'पदारथ' बनने की यह अलौकिकता कैसे और कहाँ से आती है? तुलसी के अनुसार यह 'कर्म' से आती है। जिन्हें इस संसार में कोई 'पदारथ' नहीं मिलता वे अभागे हैं। जबकि तुलसी तो कहते हैं– सकल पदारथ हैं जग माहीं।

क्या हैं ये 'पदारथ'? ये पदारथ है– भूख, प्यास, थकान, दुख, बीमारी, बुढ़ापा, मृत्यु और पुनर्जन्म। जिसे भूख, प्यास, थकान नहीं लगती उसे सब कुछ होने पर भी तृप्ति और विश्राम में छुपा हुआ आनंद 'पदारथ' नहीं मिलता। दुख के बिना सुख और बीमारी के बिना स्वास्थ्य के महत्व का कुछ पता नहीं लगता। मृत्यु है तो जीवन एक उपलब्धि है, एक उत्सव है। भय तो पुनर्जन्म का भी लगता है कि पता नहीं अगले जन्म अपने किस दुष्कर्म का क्या फल भुगतना पड़ेगा? इन सबका इलाज, रास्ता है कर्म और निरंतर, आजीवन कर्म करना।

देवता इसीलिए अभागे हैं कि उन्हें भूख, प्यास, बीमारी, मृत्यु, बुढ़ापा नहीं व्यापते। वे खुद दुखी और कुंठित हैं और दूसरों को दुखी करते रहते हैं। वे क्या जानें मृत्यु लोक का रोमांच।

मृत्युलोक में कर्म न करने वाले मनुष्य के अतिरिक्त कोई चिंतित और कुंठित दिखाई नहीं देता क्योंकि वह कर्म करता है। कर्म के बिना उसका जीवन ही संभव नहीं है। मनुष्यों में अतिरिक्त दुख और कुंठायें मिलती हैं क्योंकि वह कर्म करने की बजाय कर्म किए बिना सब कुछ पाना चाहता है। इसलिए वह चालाकी से दूसरों के कर्मों के फल चुराना चाहता है। इसीलिए उसके जीवन में अतिरिक्त और अनावश्यक संघर्ष हैं। और सब कुछ होते हुए भी संतुष्ट नहीं है।

मनुष्य ने खुद को सभी जीवों से श्रेष्ठ प्रचारित कर रखा है लेकिन वही सबसे अधिक कुंठित है। क्योंकि बिना श्रम किए सब कुछ पाने की जुगत कोई श्रेष्ठता नहीं है।सब जीव बिना किसी अपवाद के सुबह से अपना कर्म करना शुरू करते हैं। कोई संग्रह नहीं। संतुष्ट; चैन की नींद। कोई जाति, नस्ल, पद, धन की कुंठा नहीं। कोई हीरे का हार नहीं, कोई तख्त-ए-ताऊस नहीं।

वस्तुओं से भरे सबसे महँगे महलों में न वह हवा, न चाँदनी है, न बारिश की फुहार है, न पक्षियों की चहचहाहट है। इसलिए जीवन नहीं है। जीवन जीवन के साथ ही है। यह पृथ्वी सबकी है। मनुष्य भी अन्य जीवों की तरह उसका एक हिस्सा है, एकमात्र नहीं। वह पृथ्वी का स्वामी नहीं है। तभी बुद्ध, महावीर, नानक छोड़कर सब कुछ पा जाते हैं। जो सब कुछ पाना चाहते हैं उन्हें कुछ नहीं मिलता।

एक बार कोई भी कर्म करके देखिए। एक गमले में पालक, धनिया ही लगाकर देखिए और उसका स्वाद और आनंद अनुभव कीजिए। अपनी कमीज का टूटा हुआ बटन ही अपने हाथ से लगाकर देखिए और कर्म के फल को अनुभव कीजिए।

थोड़ा और भी आगे बढ़ें तो अपनी प्यास का पानी किसी के साथ साझा करके देखें, बिना दानवीरता का विज्ञापन किए हुए।

जहाँ तक सोने चाँदी और हीरे जवाहरात की बात है तो वे एक जून का भोजन भी नहीं बन सकते हैं, न अनिद्रा और चिंता से बचा सकते हैं और न ही वे किसी बीमारी का इलाज हैं।

कृष्ण भी कहते है– जीव कर्म किए बिना नहीं रह सकता। कर्म नहीं करेगा तो कुकर्म करेगा, औरों को परेशान करेगा। इसलिए हे अर्जुन, तू अपना कर्म कर।

कुल्हाड़ी की सार्थकता काटते-काटते घिस जाने में है न कि जंग लग जाने में। वैसे ही ऋषि कामना करता है–

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतम् समाः"

कि मनुष्य को इस संसार में कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिए।

–रमेश जोशी

संस्कृति-संगम

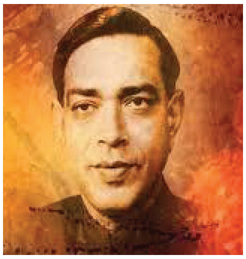

रामधारी सिंह दिनकर

एक

जहाँ तक जाना जा सका है, भारतवर्ष का इतिहास यह मिलता है कि यहाँ द्रविड़ पहले और आर्य बाद को आए थे और द्रविड़ों के भी पूर्व यहाँ नीग्रो और औष्ट्रिक जातियों के लोग बसे थे जिनकी सन्ततियाँ आज वनों में रहती हैं अथवा अन्त्यज के रूप में देश की बाकी जनता के साथ हैं।

भारतीय संस्कृति के मूल उत्स तक जाने की राह अभी तक नहीं खुली है, के इसकी कोई सम्भावना ही दीखती है कि वहाँ तक जाने का कोई सुस्पष्ट मार्ग कभी भी पाया जा सकेगा ! केवल अनुमान के बल पर हम जानते हैं कि आर्यों के आने के पूर्व इस देश में जो लोग बसते थे, वे सुसभ्य थे, नगर-सभ्यता के स्वामी थे और उनका धर्म भी काफी विकसित हो चुका था। इन्हीं आर्य-पूर्व भारतवासियों के नगरों का विध्वंस करने के कारण आर्यों के रण-देवता इन्द्र का नाम पुरन्दर पड़ा। और आर्य जब इस देश में बस गए तथा द्रविड़ आदि जनता के साथ उनका सम्बन्ध सुदृढ़ हो गया, तब संस्कृति का वह बुनियादी रूप तैयार होने लगा जिसे हम हिन्दू या भारतीय संस्कृति कहते हैं।

उन्नीसवीं सदी में जब आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, थियोसॉफी और प्रार्थना-समाज के आन्दोलन उठे तब उन सभी आन्दोलनों के नेताओं ने इस बात पर जोर दिया कि वेद और उपनिषदें, ये हमारे देश की प्राचीनतम विद्याएँ हैं जो आज के प्रसंग में भी सत्य और सुगम्भीर हैं। थियोसोफिस्टों को छोड़कर बाकी नेताओं ने यह भी घोषणा की कि हिन्दुत्व का वही रूप सत्य है जिसका समर्थन वेदों और उपनिषदों में पाया जा सकता है। इस घोषणा के दो परिणाम निकले। एक तो यह कि हिन्दू-धर्म का पुराण-समर्थित रूप उपेक्षित हो गया और दूसरा यह कि लोग यह मानने लगे कि हिन्दुत्व की रचना उन लोगों ने की, जिन्होंने वेद रचा था।

किन्तु अर्वाचीन अनुसंधानों से जो तथ्य सामने आए हैं, उनके बल पर अब यह अनुमान प्रबलता प्राप्त कर रहा है कि हिन्दुत्व की सारी बातें आर्यों की लाई हुई नहीं हैं, बहुत-सी ऐसी भी हैं जो पहले से ही इस देश में प्रचलित थीं और आर्यों ने उन्हें इच्छा या अनिच्छा से स्वीकार कर लिया। और स्वीकार करने का मुहावरा भी ठीक नहीं ऊँचता, क्योंकि संस्कृति जब विकसित होने लगती है तब उसका विकास प्रस्तावों के अनुसार नहीं होता। संस्कृति का विकास नैसर्गिक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया से कहाँ क्या परिवर्तन हो रहा है, यह बात तुरन्त जानी नहीं जा सकती। जब आर्य और द्रविड़ मिलकर एक समाज के अंग बन गए तब उनके आचार-विचार, आदतें और रिवाज भी परस्पर मिश्रित होने लगे और इस मिश्रण से जो धर्म निकला, वही भारत का सनातन धर्म एवं जो संस्कृति निकली, वही भारत की आदि (बुनियादी) संस्कृति हुई।

आर्यों के आगमन के बाद से लेकर मुस्लिम-विजय के पूर्व तक वायव्य और ईशान कोण से और भी बहुतेरे लोग इस देश में आए। किन्तु उनके आगमन से भारत की संस्कृति में कोई बुनियादी फर्क न हुआ, न यहाँ की बुनियादी जनता के ढाँचे में ही कोई परिवर्तन आया। जो लोग आए, वे हिन्दू बनकर भारतीय जन-समुद्र में डूबते चले गए और उनके साथ जो आदतें और विश्वास तथा रस्म और रिवाज आए, वे वे भी भारतीय संस्कृति में पचकर उसी के अंग हो गए। यह मिश्रण इतनी सघनता से सम्पन्न हुआ कि अब यह जानने का कोई उपाय नहीं है कि हमारी संस्कृति का कौन अंश किस जाति की देन है तथा कौन विचार किस जाति के साथ आए थे। फिर भी कुछ थोड़ी-सी ऐसी बातें जानी जा सकती हैं, जिनसे अनुमान होता है कि भारतीय संस्कृति किसी एक जाति की रचना नहीं है, उसमें भारत में आकर यहाँ बस जानेवाली अनेक जातियों के अंशदान हैं।

इस तरह का एक अनुमान यह है कि शिव की पूजा आर्यों की चलाई हुई नहीं है। वह इस देश में पहले से ही प्रचलित थी और आर्यों के घर जब आर्येतर कुल की बहुएँ आने लगी तब उनके पितृकुल के देवता भी उनके साथ आ गए। दक्ष प्रजापति के यज्ञ में सभी देवताओं के यज्ञ-भाग रखे गए, किन्तु शिव को कोई स्थान न दिया गया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आर्य ऋषि शिवजी की पूजा के विरुद्ध थे। शिवपुराण, वामनपुराण और कूर्मपुराण में शिवजी-विषयक जो कथाएँ आती हैं, उनसे भी यही अनुमान निकलता है कि ऋषि-पत्नियाँ तो शिवजी की पूजा करना चाहती थीं, किन्तु ऋषि इस विषय में अपनी पत्नियों के विरुद्ध थे। और शिव की पूजा तो करो, किन्तु प्रसाद न खाओ, इस प्रसंग से भी यही ध्वनि निकलती है कि ऋषियों ने शिवजी को अनिच्छापूर्वक ग्रहण किया था।

किन्तु यहाँ भी यह ध्यान रखना चाहिए कि ऋग्वेद में रुद्र का उल्लेख मरुतों के स्वामी के रूप में मिलता है एवं यजुर्वेद के शतरुद्रीय अध्याय में रुद्र के साथ गिरीश और शिव तथा उमा का भी उल्लेख है। किन्तु, वैदिक साहित्य में भाँग-धतूरा खानेवाले, गजाजिन पहनने और श्मशान में घूमनेवाले कपर्दी का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। इसके विपरीत, मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में शिव की जो मूर्तियाँ मिली हैं, उनसे यह बात, प्रायः सिद्ध हो गई है कि आर्यों से पूर्व इस देश में शिव की पूजा प्रचलित थी। अतएव अनुमान यह होता है कि जैसे आर्यों ने प्रकृति के ललित रूपों पर से विष्णु की कल्पना निकाली थी, वैसे ही उसके कर्कश रूपों पर से उन्होंने रुद्र की कल्पना प्रस्तुत की थी। उधर शिवजी की पूजा जनता में पहले से ही प्रचलित रही होगी और जनता ने अपनी भावना के अनुसार

शिव-सम्बन्धी अनेक प्रकार की कल्पनाएँ भी कर रखी होंगी। पीछे जब आर्य और आर्येतर जातियाँ समन्वित हुईं तब उनकी रुद्र और शिव सम्बन्धी कल्पनाएँ एकाकार हो गईं जिनके परिणामस्वरूप हमें शैव धर्म की परम्परा प्राप्त हुई है। इस अनुमान का समर्थन इस बात से भी होता है कि शिवजी के पुत्र कार्तिक और गणेश की पूजा जिस उत्साह से दक्षिण भारत में की जाती है, उस उत्साह से वह उत्तर में कहीं भी नहीं की जाती और जन-जीवन में शिवजी जैसे दक्षिण में घुले हुए हैं वैसे उत्तर भारत में नहीं। ये सारी बातें बतलाती हैं कि शिवधर्म का मूल आर्येतर जातियों के हृदय में था। आर्यों की सेवा यह है कि उन्होंने इसके दर्शन-पक्ष का विकास किया।

और एक शैव धर्म को लेकर ही यह अनुमान खड़ा किया जाता हो सो बात नहीं है। और भी शंकाएँ हैं जिनके समाधान के लिए हमें इस निष्कर्ष पर आना पड़ता है कि हमारा धर्म और हमारी संस्कृति अनेक स्रोतों का रस पीकर बढ़ी है। उदाहरण के लिए, वैष्णवों के तीन पुराण हरिवंश, विष्णु और भागवत हैं। लेकिन इनमें से किसी में भी राधा नाम का उल्लेख नहीं मिलता। हमारे प्राचीन साहित्य में भगवान कृष्ण की बाललीला का ही वर्णन मिलता है। फिर बाद को राधा के साथ उनकी प्रेम-लीला की कहानियाँ कहाँ से आ मिलीं? वैष्णवों का जो सम्प्रदाय एकमात्र भागवत पर आधारित है वह राधा को नहीं मानता। दूसरी ओर जो भी सम्प्रदाय भागवत के बाद वाले पुराणों को मानते हैं, वे राधा को भी स्वीकार करते हैं। इसलिए यह बहुत सम्भव दीखता है कि वैष्णव धर्म में कृष्ण की बाललीला और राधा के साथ उनके प्रेम की कहानी किसी आर्येतर भंडार से आ जुड़ी है।

और यह भी नहीं कहा जा सकता कि भारतीय संस्कृति केवल आर्यों और द्रविड़ों की रचना है। यूनानी, मंगोल, शक, कुशन, आभीर, हूण आदि जो भी जातियाँ भारत में आकर यह बस गईं, उन सबका कुछ-न-कुछ योगदान यहाँ की संस्कृति को मिला होगा। यद्यपि इसके बिलगाव का अब कोई उपाय नहीं है। और तो और, आज की वनवासी जातियों के पूर्वज औष्ट्रिक या आग्नेय जाति के लोगों से भी भारतीय संस्कृति को अनेक उपकरण प्राप्त हुए हैं। चन्द्रमा को देखकर तिथि गिनने का रिवाज आग्नेय सभ्यता की देन है तथा पूर्ण चन्द्र के लिए राका एवं नए चाँद के लिए कुहू, ये शब्द भी आग्नेय भंडार से आए हैं। कहते हैं, फसल देखकर पुनर्जन्म की कल्पना भी आग्नेय लोगों ने ही की थी। और तो और, भाषातत्त्वज्ञों का कहना है कि हो न हो, स्वयं गंगा शब्द आग्नेय शब्द-भंडार से आया होगा।

देवर और देवरानी तथा जेठ और जेठानी की प्रथा भी, शायद, आग्नेय लोगों से आई है। सिन्दूर का प्रयोग और अनुष्ठानों में नारियल और पान रखने के रिवाज भी सम्भवतः आग्नेय रिवाजों के यादगार हैं। आग्नेय जाति के लोग देवता के सामने बलिदान किए गए पशु के रक्त को मस्तक में लगाने को शुभ मानते थे। वही रिवाज सिन्दूर लगाने की प्रथा में बदल गया।

शास्त्रानुसार, प्रेतों की पूजा निषिद्ध है। ग्रामदेवता और देवियों के पूजकों को मनु ने नाना स्थानों पर पशु कहा है। किन्तु ग्रामों में अब ब्राह्मण भी भूत-प्रेत और ग्रामदेवता की पूजा करते हैं। अवश्य ही यह प्रेत-पूजा आग्नेय सभ्यता की देन रही होगी।

अनेक उदाहरणों में से ये कुछ थोड़े-से दृष्टान्त हैं, जिनसे पता चलता है कि भारतीय संस्कृति की रचना में उन सभी जातियों ने हिस्सा लिया है जो यहाँ आकर हिन्दू-वृत्त में सम्मिलित हो गईं। जब तक मुसलमान विजेता बनकर न आए थे, तब तक इस देश में संस्कृति केवल एक थी। हाँ, उनके आने के बाद यह दो संस्कृतियों का देश हो गया। किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, इन दोनों संस्कृतियों की पारस्परिक दूरी कम होती गई तथा भारतीय इस्लाम अन्य देशों के इस्लाम से ईषत् भिन्न हो गया, क्योंकि निम्न वर्ग के जो लाखों हिन्दू-मुसलमान हुए, उनके साथ हिन्दुओं की अनेक आदतें इस्लाम में प्रविष्ट हो गईं। यह भी सत्य है कि बदले में इस्लाम का भी यत्किंचित् प्रभाव हिन्दुत्व पर पड़ा। परिणाम यह है कि आज के हिन्दू और मुसलमान आपस में उतने भिन्न नहीं हैं, जितने पठानों के राज्यकाल में रहे होंगे। अपने देश के भीतर रहने पर हिन्दू और मुसलमान अपनी भिन्नता का थोड़ा-बहुत ध्यान रख सकते हैं, किन्तु यदि दोनों अरब या ईरान पहुँच जाएँ तो वहाँ के लोग दोनों को हिन्दुस्तानी ही कहेंगे। क्योंकि कोई भी हिन्दुस्तानी मुसलमान अरबों और ईरानियों के बीच केवल इस कारण नहीं खप सकता कि धर्म से वह मुसलमान है।

संस्कृति का स्वभाव है कि वह आदान-प्रदान से बढ़ती है। जो जाति केवल देना ही जानती है, लेना कुछ भी नहीं, उसकी संस्कृति का एक दिन दिवाला निकल जाता है। इस सम्बन्ध में दोनों प्रकार के उदाहरण हमें अपने ही देश में मिल सकते हैं। जब भारतवर्ष, सचमुच, महान था तब यहाँ के लोग संस्कृति के क्षेत्र में परहेज की भावना से पीड़ित नहीं थे। उन्हें अन्य जातियों से ज्ञान ग्रहण करने में लज्जा नहीं आती थी। यूनानियों को हमने थोड़ा-सा दर्शन सिखाया था, किन्तु बदले में उनसे हमने ज्योतिष की कितनी ही बातें सीख ली थीं जिसके प्रमाण हमारे ज्योतिष के रोमक-सिद्धान्त और होराचक्र हैं। "राशि चक्र" ग्रीक वाक्यांश "ज़ोडियाकोस" से आया है जिसका अर्थ है "जानवरों का चक्र"। यूनानियों ने आकाश को बारह समान भागों में विभाजित किया, जिनमें से प्रत्येक एक चयनित नक्षत्र और ज्योतिषीय चिह्न से संबंधित था। संस्कृत का स्वयं 'केन्द्र' शब्द यूनानी 'केंटर' से आया हुआ है।

इसी प्रकार, हमने अरबों से भी ज्योतिष की बहुत-सी बातें ग्रहण की जिनमें से सर्वप्रधान मासफल और वर्षफल निकालने की ताजक-पद्धति है जिस पर अपने यहाँ बीस-पच्चीस ग्रन्थ लिखे गए थे, और बदले में हमने पहले अरबों को और फिर उनके द्वारा यूरोप को गणित और दर्शन की कितनी ही बातें सिखाईं। आज हम जिन अंकों को अन्तर्राष्ट्रीय कहते हैं, वे असल में भारतवर्ष में जनमे थे। यहीं से वे पहले अरब गए और अरब के ही द्वारा वे यूरोप को प्राप्त हुए थे। अरबी में आज भी अंक की संज्ञा हिन्दसा है।

किन्तु, जब से हमने संस्कृति के क्षेत्र में परहेज की नीति अख्तियार की, हमारा पतन होने लगा। बहुत-सी वनवासी जातियाँ ऐसी हैं जो सभ्यता के सम्पर्क में आने से भय खाती हैं। यह भय उनकी संस्कृति को हानि पहुँचा रहा है। और यही हानि उनकी संस्कृति की भी होगी जो आसपास की संस्कृतियों से छूत मानते हैं। छुआछूत की भावना और सबसे बचकर अलग बैठने का भाव संस्कृतियों को ले डूबता है।

प्राचीन भारत आसपास की दुनिया में जगद्गुरु समझा जाता था, किन्तु साथ ही वह जगत्-शिष्य भी था। विचित्रता की बात यह है कि जब तक सिखाने के साथ खुद भी कुछ सीखने की भावना उसमें बनी रही, संसार में उसका गुरुरूप ही प्रधान रहा। किन्तु जभी उसके भीतर यह जड़ता या अहंकार जाग्रत हुआ कि हम दूसरों को तो शिक्षा देंगे, किन्तु स्वयं किसी से कुछ सीखने न जाएँगे, तभी भारत का पतन आरम्भ हो गया। और जो सीखने को तैयार नहीं है, वह धीरे-धीरे सिखाना भी भूल जाता है। तभी तो संस्कृति के नेताओं ने भारत में यह नियम चला दिया था कि शूद्र यदि वेद का मन्त्र सुन ले तो उसके कान में गला हुआ राँगा डाल दो।

दो

भारतीय संस्कृति के लम्बे इतिहास से जो शिक्षा निकलती है, वह यह है कि जब-जब बाहर के लोग काफी बड़ी संख्या में भारत आए, तब-तब भारतीय संस्कृति में महाक्रान्ति घटित हुई और उसका रूप पहले की अपेक्षा बहुत अधिक निखर उठा। पहली महाक्रान्ति वेदों के समय हुई जब आर्य भारत आए और भारत की आर्येतर जातियों से मिलकर उन्होंने आर्य-सभ्यता की नींव डाली। आर्य-संस्कृति, सर्वांशतः, केवल आर्यों की रचना नहीं है, प्रत्युत उसका अधिकांश अनेक आर्येतर जातियों का अंशदान है। आर्य और आर्येतर जातियों के मिश्रण से जो जनता या समाज बना, उसी को हम भारत की बुनियादी जनता या बुनियादी समाज कह सकते हैं। मुस्लिम-आगमन के पूर्व तक इस जनता से भिन्न भारत में और कोई जनता नहीं थी। यह ठीक है कि आर्यों के बाद और मुस्लिम आगमन के पूर्व तक, भारत में कितनी ही जातियों के लोग आए, किन्तु ये सब-के-सब हिन्दू होकर भारतीय जनता में विलीन होते चले गए। हाँ, जब मुसलमानों का आगमन हुआ, तब देश में एक नई परम्परा शुरू हुई, यानी आगन्तुकों के हिन्दू हो जाने के बदले हिन्दू ही नए धर्म की दीक्षा लेने गए।

हिन्दुत्व और इस्लाम के आरम्भिक मिलन में टकराहट की कर्कशता थी, किन्तु शीघ्र ही यह कर्कशता समाप्त हो गई और दोनों धर्मों के विचारक, सन्त और कवि यह उपदेश देने लगे कि धर्म के बाहरी आचार मनुष्य-मनुष्य में भेद डालते हैं, इसलिए वे हैं। धार्मिक मनुष्य की असली पहचान यह है कि वह मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं मानता। भारतीय संस्कृति का रूप तभी सामाजिक हो गया था, जब आर्यों और आर्येतर जातियों ने परस्पर मिलकर एक जाति और एक संस्कृति की नींव डाली थी। बाद को, मंगोल, यूनानी, शक, हूण और मुस्लिम आगमन से पूर्व आनेवाले तुर्क जब हिन्दू हो गए, तब उनके साथ भी अनेक प्रकार के रीति-रिवाज भारतीय संस्कृति में प्रविष्ट हो गए।

इस प्रकार, भारतीय संस्कृति की सामासिकता बराबर बढ़ती आ रही थी। जब मुसलमान आकर भारत में बस गए तब हमारी संस्कृति की सामासिकता में और भी वृद्धि हुई। बौद्ध और जैन धर्मों के कारण हिन्दुत्व, प्रायः निवृत्तिमार्गी हो गया था। किन्तु इस्लाम प्रवृत्ति का प्रेमी था। जब दोनों धर्म भारत में मिले, उनके मिलन से प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच एक विलक्षण समन्वय उत्पन्न हुआ जिसकी झलक हम कबीर, नानक और जायसी में तथा अन्य कारणों से वही भाव सूरदास, विद्यापति और चंडीदास की कविताओं में देखते हैं। किन्तु हिन्दुत्व और इस्लाम के मिलन का इतना ही नतीजा नहीं निकला। इस मिलन के और भी कितने ही सुपरिणाम हैं, जिनकी झाँकी हमें मुस्लिम-काल की चित्रकारी और स्थापत्य, संगीत और वाद्य तथा रहन-सहन, खान-पान, पोशाक और सामाजिक आचार में मिलती है। हिन्दुत्व और इस्लाम के मिलन से जो सामाजिकता जन्मी, वह नाज़ुक तो है, मगर उसकी खूबसूरती से इनकार नहीं किया जा सकता। जो विलक्षणता कमल और गुलाब के मिलन में है, महाकाव्य और प्रगीत-काव्य के मिश्रण में है, विश्वकर्मा और जौहरी के आलिंगन में है, यही विलक्षणता इस्लाम और हिन्दुत्व के मिलन से उत्पन्न हुई, जिसके सबसे जाज्वल्यमान उदाहरण आगरे का ताजमहल, रहीम के दोहे और घनानन्द तथा नजीर अकबराबादी के काव्य हैं।

मगर एक अरसे के बाद भारतीय इस्लाम के भीतर भी प्रवृत्ति की शिक्षा मन्द पड़ गई और वह भी धीरे-धीरे निवृत्ति के उसी अँधियारे में जा फँसा जिसमें बुद्ध के बाद का हिन्दुत्व रहता आया था। ठीक उसी समय पलासी के मैदान में क्लाइव की तोपें गरज उठीं, जो एक साथ अभिशाप और वरदान, दोनों का प्रतीक थीं। अभिशाप इसलिए कि इन्हीं तोपों के मुख से भारत में गुलामी का धुआँ विकीर्ण हुआ। और वरदान इसलिए कि इन्हीं तोपों की गड़गड़ाहट से भारतवासियों की वह कुम्भकर्णी निद्रा टूटी, जो प्रायः हर्षवर्द्धन के बाद, किसी-न-किसी रूप में, बरकरार चली आ रही थी।

जब यूरोप भारत पहुँचा, उस समय हिन्दू और मुसलमान, काफी हद तक अकर्मण्य हो चुके थे। धर्म के नाम पर वे रूढ़ियों को पूजते थे और विद्या के नाम पर दर्शन, काव्य, पुराण और कुछ चालू वैद्यक और ज्योतिष ग्रन्थों के सिवा उन्हें अपने किसी अन्य ग्रन्थ का पता नहीं था। उधर यूरोप विज्ञान और बुद्धिवाद की मशालें लिये आया था। वह अमेरिका और फ्रांस की राज्य-क्रान्तियाँ देख चुका था तथा अज्ञात देशों और समुद्रों का पता लगाकर वह एशियावालों के लिए आश्चर्य का विषय बन गया था। वह स्वतन्त्र चिन्तन का प्रेमी और ऐसी हर बात को शंका से देखने का अभ्यासी था जो बुद्धि की पहुँच से परे दीखती थी। यूरोप की सभ्यता उच्छल और जवान थी। भारतीय संस्कृति बूढ़ी, परेशान और अपने-आपमें जकड़ी हुई थी। जब दोनों सभ्यताएँ मिलीं, तब इस टकराहट से इस्लाम और हिन्दुत्व, दोनों काँप उठे। विशेषतः अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दू नौजवान, अपने धर्म और संस्कृति से घृणा करने लगे और ऐसा दिखाई पड़ा, मानो अंग्रेजी शिक्षा के जरिए ही सारा भारतवर्ष ईसाई बन जाएगा। किन्तु इस टकराहट ने हिन्दुत्व को तुरन्त जगा भी दिया और नई परिस्थिति का सामना करने के लिए हिन्दुत्व के भीतर से नए सुधारक और सन्त उत्पन्न होने लगे। राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द, परमहंस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द और बालगंगाधर तिलक-ये इसी जाग्रत या अभिनव हिन्दुत्व के व्याख्याता हुए हैं। इनके व्याख्यान का हिन्दुत्व वह नहीं है जो मध्यकाल अथवा बौद्धकाल में था।

अभिनव हिन्दुत्व, निवृत्ति नहीं, प्रवृत्ति पर जोर देता है। वह संसार से भागकर वैयक्तिक मोक्ष खोजने को धर्म का सच्चा स्वरूप नहीं

मानता, प्रत्युत संन्यासियों को भी वह समाज-सेवा में प्रवृत्त करता है, जिस सेवा-कार्य में असंख्य गृहस्थ लगे हुए हैं। भारतीय नारियों की जो प्रतिष्ठा वैदिक काल में थी वह भारत में फिर से वापस आ गई है और अब धर्म की एक भी कड़ी ऐसी नहीं है जो नारियों को कहीं से भी बाँधकर गुलाम रख सके।

सभी धर्म एक हैं, इस सत्य की जैसी गहरी अनुभूति अभिनव हिन्दुत्व के पास है, वैसी दुनिया में और कभी देखी न गई थी। अभिनय हिन्दुत्व के अन्यतम साधक, परमहंस रामकृष्ण, बारी-बारी से शाक्त, वैष्णव, वेदान्ती, ईसाई और मुसलमान हुए थे, और इन सभी मार्गों की साधना करके उन्होंने जो उपदेश दिया, वह यह था कि हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई या बौद्ध मत में कोई भेद नहीं है। अभिनव हिन्दुत्व के दूसरे व्याख्याता स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में कहा था कि परस्पर एक-दूसरे के धर्म को बरदाश्त करना भी यथेष्ट नहीं है। हमें तो प्रत्येक धर्म को अपना ही धर्म मानना चाहिए। इसी प्रकार, महात्मा गांधी, अरविन्द और रवीन्द्र के प्रयोगों के भीतर से हिन्दुत्व का जो रूप प्रकट हुआ है, वह लगभग विश्वधर्म की भूमिका बन गया है। जब सांस्कृतिक जागरण होता है, जातियों के कुछ प्राचीन सत्य दोबारा जन्म लेते हैं। भारतवर्ष में उन्नीसवीं सदी में जो सांस्कृतिक जागरण या 'रिनांसा' हुआ, उसमें वेदों और उपनिषदों के सत्यों ने पुनर्जन्म ग्रहण किया और तभी से विज्ञान के सत्यों के साथ उन्हें एक करके हम आगे बढ़ रहे हैं।

खड़े तो हम अपनी ही जमीन पर हैं, किन्तु नवीन क्षितिज से विश्व में जितनी भी किरणें उतरी हैं, हम उन सबका आलिंगन चाहते हैं। यूरोप की कर्मठता को हम भारतीय चिन्तन-शक्ति से एकाकार करना चाहते हैं। इसीलिए भारत में हमने गृहस्थ और संन्यासी का भेद उठा दिया है। विज्ञान की सीमाएँ यूरोप में अब दिखाई पड़ने लगी हैं। किन्तु विवेकानन्द को वे उन्नीसवीं सदी में ही ज्ञात थीं। विज्ञान का हम स्वागत करते हैं और चाहते हैं कि हमारे देश में भी उसका ऊँचे-से-ऊँचा विकास हो। किन्तु भारत पहुँचकर विज्ञान की ध्वंसकता दूर हो जाएगी, क्योंकि यहाँ हम जिस मनुष्य को जन्म दे रहे हैं वह हृदयहीन नहीं होगा। भारत की विशेषता आदर्श व्यक्ति की रचना रही है। यूरोप आदर्श समाज के निर्माण में पटु है। किन्तु आदर्श व्यक्तियों की संख्या न बढ़े तो आदर्श समाज की कल्पना ही निस्सार है। भारत जिस साधना में लगा हुआ है, यदि वह सफल हुई तो विश्व के सामने एक दिन हम वह समाज उपस्थित कर सकेंगे जिसका केवल ढाँचा ही आदर्श नहीं होगा प्रत्युत व्यक्ति भी आदर्श होंगे। यूरोप में साधन और साध्य दो अलग वस्तुएँ हैं। किन्तु अपने इतिहास और गांधीजी की शिक्षा से भारतवर्ष में हम यह मानकर चल रहे हैं कि साधन और साध्य, ये एक ही वस्तु के दो नाम हैं। ●

पढ़ते-पढ़ाते

जब किसी समाज में अपने भीतर हो रहे गलत को गलत कहने की हिम्मत नहीं दिखती, जब कोई समाज अपने भीतर की कुरीतियों, हिंसा का विरोध करने का साहस खो देता है, वह कहने को ज़िंदा तो होता है मगर ज़िंदादिल नहीं रह जाता।

भरत मुनि का नाट्यशास्त्र

नाटक साहित्य, संगीत, नृत्य, अभिनय आदि समस्त कलाओं का एक अद्भुत समुच्चय है जो बहुत प्रभावोत्पादक होता है। इसीलिए कहा गया है– काव्येषु नाटकम् रम्यम्।

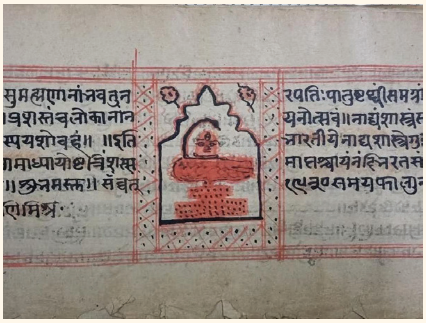

नाट्यशास्त्र पर संस्कृत में सबसे पुराना ग्रंथ है भरत मुनि का नाट्यशास्त्र। जिसकी रचना ईसा पूर्व 100 से 400 वर्ष पूर्व मानी जाती है। इसे यूनेस्को ने अपने मेमोरी ऑफ वर्ल्ड रजिस्टर में शामिल किया है।

आगे विश्वा में हम अपने पाठकों के लिए भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' पर और चर्चा करेंगे।

बधाई एक कविता के साथ

हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था

विनोद कुमार शुक्ल

(इस वर्ष का ज्ञानपीठ पुरस्कार कवि, कथाकार विनोद कुमार शुक्ल के लिए घोषित किया गया है। बधाई, उनकी एक छोटी लेकिन सशक्त कविता के साथ)

हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था
व्यक्ति को मैं नहीं जानता था

हताशा को जानता था
इसलिए मैं उस व्यक्ति के पास गया

मैंने हाथ बढ़ाया
मेरा हाथ पकड़कर वह खड़ा हुआ

मुझे वह नहीं जानता था
मेरे हाथ बढ़ाने को जानता था

हम दोनों साथ चले
दोनों एक दूसरे को नहीं जानते थे

साथ चलने को जानते थे।

वैश्विक युग में हिन्दी भाषा : एक नई दिशा की ओर

डॉ. राकेश कुमार
कार्मेल, इंडियाना, अमेरिका, ईमेल: arksri@yahoo.com

प्रस्तावना

हिन्दी भाषा भारत के भाषाई परिप्रेक्ष्य में एक प्रमुख स्थान रखती है और इसे भारतीय संविधान से संरक्षण प्राप्त है, जिसका अर्थ है कि हिन्दी का सम्मान और सुरक्षा संविधान द्वारा सुनिश्चित की गई है। इसके अलावा, हिन्दी समय के साथ बदलती दुनिया और वैश्वीकरण की ज़रूरतों के अनुसार खुद को ढाल रही है और निरंतर विकसित हो रही है। भारत में हिन्दी को आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है, और यह देश में एकता बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में कई विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं, लेकिन हिन्दी एक सामान्य संपर्क भाषा के रूप में काम करती है, जिससे लोग आपस में आसानी से संवाद कर सकते हैं। इस प्रकार, हिन्दी न केवल एकता का प्रतीक बनती है, बल्कि यह देश की भाषाई विविधता का भी सम्मान करती है।

अब बात करते हैं वैश्वीकरण की। जैसे-जैसे दुनिया छोटी होती जा रही है और देशों के बीच संपर्क बढ़ रहा है, हिन्दी का महत्त्व भी लगातार बढ़ रहा है। हिन्दी अब केवल भारत तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह दुनिया के विभिन्न हिस्सों में बोली जाने लगी है, विशेष रूप से वहाँ जहाँ भारतीय मूल के लोग बसे हुए हैं। जब हम हिन्दी के प्रभाव की चर्चा करते हैं, तो यह सिर्फ एक भाषा नहीं है, बल्कि यह भाषा, संस्कृति और राजनीति के आपसी प्रभावों को भी प्रदर्शित करती है। इसी कारण हिन्दी का वैश्विक प्रभाव निरंतर बढ़ता जा रहा है।

यह लेख हिन्दी की संवैधानिक सुरक्षा, यानी इसे मिलने वाली कानूनी सुरक्षा, और इसके उपयोग को बढ़ाने के लिए किए जा रहे प्रयासों पर विस्तार से चर्चा करता है। इसके अलावा, यह लेख भारत और दुनिया भर में हिन्दी की स्थिति का विश्लेषण भी करता है और बताता है कि हिन्दी को समझने और उसके उपयोग को बढ़ाने के लिए किस प्रकार के प्रयास किए जा रहे हैं। लेख में यह भी बताया गया है कि भारतीय संविधान में हिन्दी के लिए क्या प्रावधान हैं और यह कैसे अमेरिका के संविधान से अलग है। उदाहरण के तौर पर, अमेरिकी दृष्टिकोण से भारतीय भाषाई अधिकारों की तुलना की जाती है, ताकि यह समझा जा सके कि भारत और अमेरिका में भाषाओं के प्रति क्या नीतियाँ हैं। इस लेख में हिन्दी के बढ़ते महत्त्व और इसके विश्वभर में फैलने की प्रक्रिया को भी समझाया गया है, और यह दर्शाया गया है कि यह भाषा भारत के भीतर और बाहर अपनी पहचान कैसे बना रही है।

वैश्विक संदर्भ में हिन्दी की स्थिति

हिन्दी दुनिया की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है, और Ethnologue की रिपोर्ट के अनुसार, विश्वभर में लगभग 60 करोड़ लोग हिन्दी बोलते हैं, और यह संख्या लगातार बढ़ रही है। भारत में 53 करोड़ से अधिक लोग इसे अपनी पहली भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं, जबकि 77% भारतीय इसे समझते हैं और 66% लोग इसे अपनी दैनिक जीवन में उपयोग करते हैं, जो यह दर्शाता है कि हिन्दी भारत में गहरी जड़ें जमा चुकी है। हिन्दी केवल भारत तक सीमित नहीं है; यह दुनिया के 132 से अधिक देशों में बोली जाती है, जिनमें संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, कनाडा और ऑस्ट्रेलिया जैसे देश भी शामिल हैं।

हालिया आंकड़े यह बताते हैं कि हिन्दी की वैश्विक उपस्थिति लगातार बढ़ रही है। केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही 1.6 मिलियन से ज्यादा लोग हिन्दी बोलते हैं। वैश्विक स्तर पर हिन्दी बोलने वालों की संख्या में वृद्धि यह दर्शाती है कि हिन्दी अब एक प्रभावशाली भाषा बन रही है, जिसका उपयोग संवाद, संस्कृति और वाणिज्य के लिए बढ़ता जा रहा है, और इससे हिन्दी अपनी वैश्विक स्थिति को और मजबूत कर रही है।

हिन्दी की संवैधानिक सुरक्षा, विकास और वैश्विक विस्तार

भाषा को सांस्कृतिक पहचान और आर्थिक उन्नति का महत्त्वपूर्ण आधार मानते हुए, भारतीय संविधान हिन्दी को अनुच्छेद 343 से 351 के तहत विशेष सुरक्षा प्रदान करता है। ये संवैधानिक प्रावधान हिन्दी के प्रचार-प्रसार को सुनिश्चित करते हैं, साथ ही भारत की भाषाई विविधता का सम्मान भी करते हैं। अनुच्छेद 343 के तहत देवनागरी लिपि में हिन्दी को संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है।

भारत में और वैश्विक स्तर पर हिन्दी की स्थिति को मजबूत करने के लिए कई पहलें की गई हैं। 2008 में विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना ने दुनिया भर में हिन्दी के प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अलावा, 2018 में भारत का हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषाओं में से एक बनाने का प्रस्ताव हिन्दी की अंतरराष्ट्रीय पहचान को बढ़ाने की दिशा में एक कदम है। आज, दुनिया भर के 180 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिन्दी की पढ़ाई हो रही है, और संयुक्त राज्य अमेरिका में 60 से अधिक संस्थानों में उच्च स्तर पर हिन्दी शिक्षण की प्रक्रिया जारी है, जिसके परिणामस्वरूप

भाषा का वैश्विक परिचय और प्रवीणता बढ़ रही है, और यह शिक्षा, कूटनीति और व्यापार के क्षेत्र में एक आवश्यक माध्यम बनता जा रहा है।

भारत में हिन्दी की संवैधानिक सुरक्षा

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 का उद्देश्य न केवल हिन्दी के विकास को सुनिश्चित करना है, बल्कि भारत में बोली जाने वाली अन्य भाषाओं के महत्त्व को भी बनाए रखना और भाषाई समावेशन एवं राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना है।

अनुच्छेद आधारित संक्षिप्त विवरण

अनुच्छेद 343 - संघ की आधिकारिक भाषा : अनुच्छेद 343 हिन्दी को देवनागरी लिपि में भारत संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में नियुक्त करता है। हालांकि, संविधान के प्रविधान के अनुसार, पहले 15 वर्षों तक (1965 तक) अंग्रेजी भी आधिकारिक उद्देश्यों के लिए उपयोग में रहेगी। 1965 के बाद भी, अंग्रेजी को संघ सरकार के कार्यों में हिन्दी के साथ-साथ उपयोग किया जाएगा, जैसा कि आधिकारिक भाषाएँ अधिनियम, 1963 में निर्धारित किया गया है।

अनुच्छेद 344 - संघ की आधिकारिक भाषा पर संसद की आयोग और समिति : अनुच्छेद 344 राष्ट्रपति द्वारा एक आयोग की स्थापना की व्यवस्था करता है, जो संघ के आधिकारिक उद्देश्यों के लिए उपयोग की जाने वाली भाषा और हिन्दी के प्रगतिशील उपयोग के बारे में सिफारिशें करेगा। प्रत्येक 10 वर्षों में, संसद एक समिति गठित करती है, जो भाषा नीति के कार्यान्वयन की प्रगति की समीक्षा और रिपोर्ट करेगी।

अनुच्छेद 345 - राज्यों की आधिकारिक भाषा : अनुच्छेद 345 प्रत्येक राज्य को अपनी आधिकारिक भाषा(ओं) चुनने का अधिकार प्रदान करता है। राज्य विधानमंडल यह निर्णय ले सकता है कि उस राज्य में आधिकारिक उद्देश्यों के लिए कौन सी भाषा का उपयोग किया जाएगा। उदाहरण स्वरूप, महाराष्ट्र की आधिकारिक भाषा मराठी है, जबकि तमिलनाडु की आधिकारिक भाषा तमिल है।

अनुच्छेद 346 - राज्यों और संघ के बीच संवाद की आधिकारिक भाषा : अनुच्छेद 346 में कहा गया है कि संघ और राज्यों के बीच संवाद के लिए हिन्दी को आधिकारिक भाषा होना चाहिए, जब तक कि कोई राज्य अलग भाषा का उपयोग करने की इच्छा न व्यक्त करे। यदि कोई राज्य अन्य भाषा का चयन करता है, तो संघ और राज्य को मिलकर यह निर्धारित करना होगा कि उनके बीच संवाद के लिए कौन सी भाषा का उपयोग किया जाएगा।

अनुच्छेद 347 - जनसंख्या के एक वर्ग द्वारा बोली जाने वाली भाषा से सम्बन्धित विशेष प्रावधान : अनुच्छेद 347 किसी राज्य में उस विशेष भाषा को मान्यता देने का प्रावधान करता है, जिसे राज्य की एक महत्त्वपूर्ण जनसंख्या बोलती है। राष्ट्रपति उस भाषा को आधिकारिक उद्देश्यों के लिए उपयोग करने की अनुमति प्रदान कर सकते हैं। यह प्रावधान उन क्षेत्रों में क्षेत्रीय भाषाओं के उपयोग की अनुमति देता है, जहाँ वे व्यापक रूप से बोली जाती हैं, जैसे कि असम में बोडो भाषा की मान्यता।

अनुच्छेद 348 - सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालयों, आदि की भाषा : अनुच्छेद 348 में कहा गया है कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों में उपयोग की जाने वाली भाषा अंग्रेजी होगी। जबकि संविधान इन अदालतों में अन्य भाषाओं, जैसे हिन्दी, के उपयोग की अनुमति देता है, इसके लिए संसद को कानूनी कार्यवाहियों में उनके उपयोग के लिए उपयुक्त कानून बनाना आवश्यक होगा।

अनुच्छेद 349 - राज्य की भाषा के लिए विशेष प्रक्रिया : अनुच्छेद 349 किसी राज्य की आधिकारिक भाषा बदलने के लिए एक विशेष प्रक्रिया प्रदान करता है। यदि कोई राज्य अपनी आधिकारिक भाषा बदलना चाहता है, तो उसे एक निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना होगा, जिसमें राष्ट्रपति उस परिवर्तन को मंजूरी देते हैं, और उसके बाद राज्य विधानमंडल उस पर कार्रवाई कर सकता है।

अनुच्छेद 350 - शिकायतों के समाधान के लिए प्रस्तुतियों में उपयोग की जाने वाली भाषा : अनुच्छेद 350 यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी नागरिक अपनी शिकायतों के समाधान के लिए किसी भी भाषा में संघ या राज्य सरकार को प्रस्तुति दे सकता है। सरकार को उन प्रस्तुतियों का उत्तर उसी भाषा में देना होगा, जिसमें वे प्राप्त की गई हैं। यह प्रावधान भाषाई समानता और सरकारी सेवाओं तक सभी नागरिकों की पहुँच सुनिश्चित करता है।

अनुच्छेद 351 - हिन्दी भाषा के विकास के लिए निर्देश: अनुच्छेद 351 संघ को हिन्दी भाषा के विकास के लिए निर्देशित करता है, ताकि इसे भारत की मिश्रित संस्कृति के सभी तत्वों के अभिव्यक्ति के रूप में बढ़ावा दिया जा सके। यह संघ को निर्देश देता है कि हिन्दी को अन्य भारतीय भाषाओं से शब्दों को समाहित करके समृद्ध किया जाए, ताकि यह विज्ञान, प्रौद्योगिकी, साहित्य और प्रशासन में उपयोग के लिए उपयुक्त हो सके।

संयुक्त राज्य अमेरिका में भाषाई अधिकारों की संवैधानिक सुरक्षा

भारत के विपरीत, संयुक्त राज्य अमेरिका में फरवरी 2025 तक कोई आधिकारिक भाषा नहीं थी। हालांकि, नव-निर्वाचित राष्ट्रपति ने 1 मार्च 2025 को एक कार्यकारी आदेश (14224) जारी किया, जिसके तहत अंग्रेजी को अमेरिका की आधिकारिक भाषा घोषित किया गया। इसके बावजूद, अमेरिका अपनी संविधान और विभिन्न कानूनी फैसलों के जरिए भाषाई अधिकारों की रक्षा करता है। पहले और चौदहवें संशोधन (1st और 14th Amendments) के तहत किसी भी भाषा में बोलने की स्वतंत्रता दी गई है, बिना सरकारी हस्तक्षेप के। लाउ बनाम निकॉल्स (1974) जैसे अहम मामलों ने सीमित अंग्रेजी दक्षता वाले छात्रों के लिए सार्थक शिक्षा का अधिकार सुनिश्चित किया, जो शिक्षा में भाषा के महत्त्व को समझाता है।

इसके अलावा, कार्यकारी आदेश 13166 (2000) के तहत संघीय एजेंसियों को गैर-अंग्रेजी बोलने वालों को भाषा सहायता

प्रदान करने का निर्देश दिया गया था, जो अमेरिका की भाषाई समावेशिता को दर्शाता है। इस आदेश के तहत, गैर-अंग्रेजी बोलने वालों को नागरिक जीवन में पूरी तरह से भाग लेने का समान अवसर मिलता था। हालांकि, कार्यकारी आदेश 14224 (2025) ने 2000 के आदेश 13166 को निरस्त कर दिया, जिससे सीमित अंग्रेजी दक्षता वाले व्यक्तियों के लिए सेवाओं तक पहुँच में सुधार की प्रक्रिया समाप्त हो गई। अब यह देखना होगा कि भविष्य में इसका क्या प्रभाव पड़ता है।

जब भारत के हिन्दी प्रचार को संयुक्त राज्य अमेरिका की दृष्टि से देखा जाता है, तो भारत की एकल भाषा को बढ़ावा देने की नीति, अमेरिका के भाषाई विविधता की प्राथमिकता से अलग नजर आती है। भारत को अमेरिका की तरह द्विभाषी नीतियों को अपनाने से उन लोगों के लिए समावेशिता और सुलभता बढ़ सकती है जो विभिन्न भाषाओं को बोलते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रमुख कानूनी संदर्भ

ऐतिहासिक सुप्रीम कोर्ट निर्णय (1923-1927): 1923 से 1927 तक, संयुक्त राज्य सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि संविधान विदेशी भाषाएँ सीखने और सिखाने के अधिकार की रक्षा करता है। शुरुआत में, अदालत ने इसे 14वें संशोधन के तहत एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया सुरक्षा के रूप में माना, यह मानते हुए कि शिक्षा का अधिकार स्वतंत्रता का एक मौलिक हिस्सा है। बाद में, अदालत ने इसे पहले संशोधन से जोड़ा, यह मानते हुए कि विदेशी भाषाएँ सीखना और सिखाना अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हिस्सा है। इन निर्णयों ने व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं और शैक्षिक अधिकारों का विस्तार किया, यह सुनिश्चित करते हुए कि संविधान किसी भी भाषा को सीखने और सिखाने के अधिकार की रक्षा करता है।

पहला संशोधन (1791): यह संशोधन भाषाई स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है, जिससे नागरिकों को किसी भी भाषा में संवाद करने की स्वतंत्रता मिलती है।

चौदहवां संशोधन (1868): यह संशोधन समान संरक्षण का सिद्धांत बनाए रखता है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि भाषा के आधार पर भेदभाव निषिद्ध है।

ऐतिहासिक केस - लाउ बनाम निकॉल्स (1974): इस मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि यदि छात्रों को अंग्रेजी में शिक्षा दी जाती है लेकिन वे इसमें प्रवीण नहीं हैं, तो यह उनके संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन है।

द्विभाषी शिक्षा अधिनियम (1968): इस कानून ने गैर-अंग्रेजी बोलने वाले छात्रों के लिए द्विभाषी शिक्षा अनिवार्य कर दी, जिससे उन्हें अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। इसने भारतीय मूल के लोगों के बीच हिन्दी जैसी भाषाओं को बढ़ावा देने में मदद की।

कार्यकारी आदेश 13166 (2000): अमेरिकी सरकार ने एक नीति अपनाई, जिसके तहत सभी सरकारी सेवाओं में गैर-अंग्रेजी बोलने वाले नागरिकों के लिए भाषाई सहायता प्रदान की जाती है, जिससे हिन्दी जैसी भाषाओं के विस्तार को बढ़ावा मिला।

कार्यकारी आदेश 14224 (2025): अमेरिकी सरकार ने अंग्रेजी को अमेरिका की आधिकारिक भाषा घोषित किया और 2000 में जारी कार्यकारी आदेश 13166, जो सीमित अंग्रेजी दक्षता वाले व्यक्तियों के लिए सेवाओं तक पहुँच में सुधार करता था, उसे रद्द कर दिया।

वैश्विक भाषाई रुझान और हिन्दी का उदय

वैश्वीकरण के कारण भाषाओं का परिप्रेक्ष्य तेजी से बदल रहा है, और हिन्दी इस बदलाव के साथ एक महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली भाषा के रूप में उभर रही है। विशेष रूप से कूटनीति और व्यापार के क्षेत्रों में हिन्दी की भूमिका बढ़ रही है, जहाँ इसे संवाद और सहयोग के एक प्रमुख माध्यम के रूप में देखा जा रहा है। अमेरिकी सरकार ने भी अपने क्रिटिकल लैंग्वेज स्कॉलरशिप प्रोग्राम के तहत हिन्दी को एक महत्त्वपूर्ण विदेशी भाषा के रूप में मान्यता दी है, जो यह दिखाता है कि वैश्विक स्तर पर हिन्दी को गंभीरता से लिया जा रहा है।

अंग्रेजी का ऐतिहासिक रूप से वैश्विक संचार और व्यापार में प्रमुख स्थान रहा है, लेकिन अब हिन्दी भाषा कौशल की आवश्यकता विभिन्न क्षेत्रों, जैसे व्यापार, शिक्षा और तकनीकी विकास, में तेजी से बढ़ रही है। शोध से यह स्पष्ट होता है कि विश्वभर में हिंदी भाषियों की संख्या निरंतर बढ़ रही है, किंतु अंग्रेज़ी भाषी देशों में हिंदी शिक्षण की पहुँच अब भी सीमित है। इसके कारण, इन देशों में हिन्दी की शिक्षण पद्धतियों और संसाधनों में सुधार की आवश्यकता महसूस हो रही है, ताकि आने वाली पीढ़ी, विशेषकर भारतीय मूल के लोग और उनकी अगली पीढ़ी, हिन्दी भाषा और साहित्य को बेहतर तरीके से समझ सकें और उसे आत्मसात कर सकें।

डिजिटल युग में हिन्दी भाषा भी तेजी से नई तकनीकों और डिजिटल प्लेटफार्मों के साथ अनुकूलित हो रही है। सोशल मीडिया के प्लेटफार्म, जैसे फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, और ब्लॉगिंग साइट्स ने हिन्दी बोलने वालों को अपनी आवाज़ ज़्यादा प्रभावशाली तरीके से दुनिया के सामने रखने का अवसर दिया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि डिजिटल दुनिया में हिन्दी की उपस्थिति तेज़ी से बढ़ रही है, और यह भाषा न केवल व्यक्तिगत संचार के लिए, बल्कि वैश्विक स्तर पर संवाद और सूचना के आदान-प्रदान में भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने लगी है। इस वृद्धि ने हिन्दी को एक वैश्विक भाषा के रूप में और भी प्रासंगिक बना दिया है।

हिन्दी भाषा के प्रचार के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

हिन्दी का प्रचार विशेष रूप से वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में समाज और अर्थव्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण लाभ लाता है। एक मजबूत भाषा का आधार सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करता है और नए आर्थिक अवसरों के द्वार खोलता है। जब लोग हिन्दी बोलने में सक्षम होते हैं, तो उन्हें न केवल अपने देश में, बल्कि दुनिया भर में भी कई नौकरी और नेटवर्किंग के अवसर मिल सकते हैं। इससे व्यापारिक सम्बन्धों में वृद्धि होती है और सरकारी संचार बेहतर होता है। उदाहरण के लिए, भारत और अन्य देशों के बीच व्यापारिक

सम्बन्धों को सुधारने में हिन्दी एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बन सकती है। हिन्दी बोलने वाले व्यक्तियों को व्यापार, प्रशासन, शिक्षा, और कूटनीति जैसे क्षेत्रों में रोजगार मिल सकता है।

हिन्दी का प्रचार सिर्फ नौकरी के अवसरों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह देशों के बीच सांस्कृतिक और आर्थिक आदान-प्रदान को भी बढ़ावा देता है। जब और लोग हिन्दी बोलने लगते हैं, तो यह देशों के बीच संपर्क और सहयोग को आसान बनाता है। उदाहरण के लिए, हिन्दी फिल्में, संगीत, और साहित्य का वैश्विक प्रचार न केवल भारतीय संस्कृति को बढ़ावा देता है, बल्कि देशों के बीच सांस्कृतिक समझ और मेल-जोल को भी बढ़ावा देता है। इसके अलावा, हिन्दी का प्रचार उन क्षेत्रों में भी मदद करता है, जहाँ सांस्कृतिक आदान-प्रदान और विचारों का आदान-प्रदान जरूरी है, जैसे शिक्षा और शोध। हिन्दी सीखने से व्यक्ति की सोच और दृष्टिकोण में विस्तार होता है, जो वैश्विक नागरिकता के विकास में मदद करता है। इस प्रकार, हिन्दी का प्रचार सिर्फ समाज और संस्कृति के दृष्टिकोण से ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि यह वैश्विक स्तर पर आर्थिक प्रगति और सहयोग को भी बढ़ावा देता है।

हिन्दी के वैश्विक महत्त्व के प्रमुख मील के पत्थर

1977: अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में हिन्दी में पहला भाषण दिया।

2014 और 2023 : प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने संयुक्त राष्ट्र महासभा (2014) और व्हाइट हाउस (2023) में हिन्दी में भाषण दिया, जिससे हिन्दी की वैश्विक पहचान मजबूत हुई।

गूगल ट्रांसलेट : हिन्दी, गूगल ट्रांसलेट पर सबसे ज्यादा अनुवादित भाषाओं में से एक है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में हिन्दी : अंग्रेजी और स्पैनिश के बाद, हिन्दी चिकित्सकों में तीसरी सबसे बोली जाने वाली भाषा है।

कॉर्पोरेट क्षेत्र में हिन्दी का बढ़ता प्रभाव : फेसबुक और गूगल जैसी तकनीकी कंपनियां हिन्दी को विज्ञापन और सामग्री के लिए प्राथमिकता दे रही हैं। 80% भारतीय उपभोक्ता मोबाइल एप्लिकेशनों में हिन्दी सामग्री को प्राथमिकता देते हैं। भारत के 40% स्टार्टअप्स अब हिन्दी में सेवाएं प्रदान करते हैं।

हिन्दी सिनेमा का वैश्विक प्रभाव : हिन्दी सिनेमा, खासकर बॉलीवुड, ने सांस्कृतिक सीमाओं को पार किया है। फिल्में जैसे 'बाहुबली', '3 इडियट्स', और 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे' ने अंतरराष्ट्रीय दर्शकों को आकर्षित किया है। बॉलीवुड गाने अब दुनिया भर में लोकप्रिय हो रहे हैं, जिससे हिन्दी के वैश्विक प्रभाव में और वृद्धि हो रही है।

निष्कर्ष: हिन्दी–राष्ट्रीय पहचान और वैश्विक प्रभाव की भाषा

हिन्दी, जो भारतीय संविधान में संरक्षित है, न केवल हमारी राष्ट्रीय पहचान का हिस्सा है, बल्कि इसका वैश्विक प्रभाव भी बढ़ रहा है। वैश्वीकरण के इस दौर में, हिन्दी का विस्तार सांस्कृतिक आदान-प्रदान, आर्थिक सहयोग और वैश्विक संवाद में सुधार के नए अवसर प्रदान कर रहा है। हालांकि, इस वृद्धि को बनाए रखने के लिए भारत को शिक्षा, प्रशासन और डिजिटल प्लेटफार्मों पर हिन्दी की पहुँच को और बढ़ाना होगा।

संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों की भाषाई नीतियों से सीखकर भारत हिन्दी की प्रमुखता और वैश्विक प्रासंगिकता को और बढ़ा सकता है। द्विभाषिता को बढ़ावा देने और तकनीकी विकास का लाभ उठाने से हिन्दी को 21वीं सदी की वैश्विक भाषा के रूप में स्थापित किया जा सकता है। इसके लिए, भारत को स्कूलों, विश्वविद्यालयों और सरकारी संस्थानों में हिन्दी का समावेश बढ़ाना होगा, और डिजिटल प्लेटफार्मों पर हिन्दी की उपस्थिति को मजबूत करना होगा।

भारत को हिन्दी को द्विभाषिक या बहुभाषिक समाज के रूप में बढ़ावा देने की आवश्यकता है, ताकि यह वैश्विक मंच पर और प्रभावी हो सके। इस प्रकार, हिन्दी का प्रचार अब केवल एक राष्ट्रीय आवश्यकता नहीं, बल्कि एक वैश्विक आवश्यकता बन चुका है, और इसके तकनीकी एवं सांस्कृतिक संदर्भों में सशक्तीकरण से हिन्दी का प्रभाव अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बढ़ेगा। ●

गीत गाते हुए लोग : पार्वती तिर्की की एक कविता

गीत गाते हुए लोग
कभी भीड़ का हिस्सा नहीं हुए
धर्म की ध्वजा उठाए लोगों ने
जब देखा
गीत गाते हुए लोगों को
वे खोजने लगे उनका धर्म
उनकी ध्वजा
अपनी खोज में नाकाम होकर उन्होंने
उन लोगों को जंगली समझा
वे समझ नहीं पाए कि
मनुष्य जंगल का हिस्सा है
जंगली लोगों ने कभी
अपना प्रतिपक्ष नहीं रखा
वे गाते रहे और
कभी भीड़ का हिस्सा नहीं बने

बधाई : अकादमी पुरस्कार के लिए

पार्वती तिर्की को 2025 का हिन्दी युवा कवि और सुशील शुक्ल को हिन्दी बाल साहित्य पुरस्कार घोषित

महादेवी वर्मा

कह दे माँ क्या देखूँ।
देखूं खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को
तेरी चिर यौवन सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ।
तेरे असीम आँगन की
देखूँ जगमग दीवाली
यह इस निर्धन कोने के
बुझते दीपक को देखूँ।

इन पंक्तियों की रचनाकार महादेवी वर्मा को उनकी 'यामा' एवं 'दीपशिखा' काव्य-कृतियों के लिए 1982 का भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पित किया गया। हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि में अनेक साहित्यकारों का अनुपम योगदान रहा है, इनमें महादेवी वर्मा का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। महादेवी वर्मा छायावाद युग के चार स्तंभों में से एक तो हैं ही, रहस्यवादी दर्शन को अभिव्यक्त करने वाली, नारी-चिंतन की प्रवर्तक, वेदना को गीतों के साँचे में ढालकर और लौकिकता पर अलौकिकता का सहज समन्वय कर अंतर्व्यथा और आत्मचेतना की अभिव्यक्ति में आधुनिक मीरा नाम से संबोधित हुईं। आपने साहित्य की अनेक विधाओं जैसे– कविता, निबंध, संस्मरण, रेखाचित्र में सृजन किया।

महादेवी वर्मा ने समसामयिक परिस्थितियों को आत्मसात कर गहन और गंभीर भावाभिक्ति की है, उनकी स्वीकारोक्ति है– "सामाजिक तथा अन्य समस्याओं के लिए तर्क की सारणियाँ आवश्यक होती हैं, अत: मैं यह सब अपने दैनंदिन कार्य के साथ कर लेती हूँ। प्रेरणा-स्रोत बाहर से नहीं मिलते, वे अपने ही अंत:करण में बनते हैं। मैं तीव्र अनुभूति के क्षणों में ही लिखती हूँ और अनुभूतियाँ दीर्घकाल तक नहीं ठहर सकतीं। ....मुक्त रचना में केवल अपनी सुख दुखात्मक अनुभूतियाँ या उनका संस्कार पर्याप्त रहता है।" महादेवी वर्मा रहस्यवादी कवयित्री, यथार्थवादी गद्यकार, समन्वयवादी आलोचक होने के साथ-साथ अद्वितीय रेखा-चित्रकार, संस्मरण-लेखिका, सामाजिक एवं ललित निबंधकार तथा समाज एवं राष्ट्रसेविका के रूप में जानी जाती हैं।

'यामा' संग्रह पूर्व प्रकाशित कृतियों नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत की एक सौ पचासी कविताओं का संकलन है और इनमें गहरी भाव-संवेदनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। इस संग्रह की कविताओं का भावबोध सामाजिक अन्याय, प्रेम-विरह, जीवन की व्यथा का चित्रण, रहस्य, विरह और अमरता की तलाश जैसे तत्व भी मौजूद हैं, इसके साथ ही नारी-समस्याओं, सामाजिक विषमताओं और शोषण को प्रभावी काव्य-शैली में अभिव्यक्ति मिली है।

महादेवी वर्मा ने 'यामा' कविता संग्रह में दिन के चार यामों के माध्यम से संपूर्ण जीवन चक्र को समझाने का प्रयास किया है। दिन के पहले याम 'नीहार' (कुहरा) के माध्यम से जीवन के प्रारंभिक काल (बचपन) को समझाने का प्रयास किया है जो अंधकार और अज्ञान से युक्त होता है। इसके पश्चात् दिन के दूसरे याम ज्ञान रूपी 'रश्मि' के माध्यम से जीवन में उल्लास और प्रसन्नता आती है। दिन के तीसरे याम को 'नीरजा' (कमलिनी) के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है। इससे जीवन

डॉ. दीपक पाण्डेय
सहायक निदेशक, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली-66
ईमेल –dkp410@gmail.com

में कठिनाई सहन करने की मानसिक क्षमता आती है। कवयित्री सुख-दु:ख, बंधन-मुक्ति, आँसू-वेदना, मिलन-विरह, आशा-निराशा में समन्वय करने को कहती है। दिन के चतुर्थ याम को 'सांध्यगीत' के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है। जिसमें मनुष्य को जीवन के अंतिम चरण में विश्राम की आवश्यकता होती है।

जहाँ वे 'मैं नीर भरी दु:ख की बदली' लिखकर वेदना से आहत जीवन को त्राण देकर विश्व-कल्याण की दुहाई देती हैं वहीं भौतिक जीवन की असारता को व्यक्त करती हैं जिसमें भावना की तीव्रता, आत्मनिवेदन, भावान्विति और गेयता सभी दृष्टियों से गीतिकाव्य का शिल्प सँवरता है–

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना।
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली।
मैं नीर भरी दु:ख की बदली।

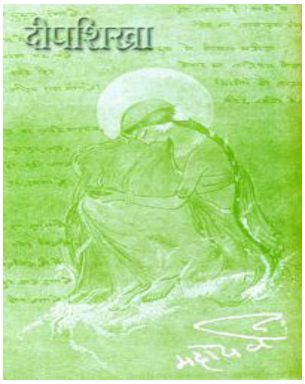

'दीपशिखा' में संकलित रचनाओं के गीतों का आधिकारिक विषय 'प्रेम' है। पर प्रेम की सार्थकता उन्होंने मिलन के उल्लासपूर्ण क्षणों से अधिक विरह की अन्तरचेतनामूलक पीड़ा में तलाश की। मिलन के चित्र उनके गीतों में आकांक्षित और संभावित, अतः कल्पनाश्रित ही हो सकते थे, पर विरहानुभूति को भी उन्होंने सूक्ष्म, निगूढ़ प्रतीकों और धुँधले बिंबों के माध्यम से ही अधिक अंकित किया। दीपशिखा में संकलित गीतों की मूल भावना का विश्लेषण करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है–'दीपशिखा कवयित्री के अपने मन का प्रतीक है। इसमें फारसी की शमा की तरह इंद्रिय-वासना की दाहक ज्वाला नहीं है वरन करुणा की स्निग्ध लौ है, जो मधुर-मधुर जलती हुई पृथ्वी के कण-कण के लिए आलोक वितरित करती है और इस जलने के पीछे-पीछे किसी अशांत प्रिय का संकेत है, जो उसे असीम बल तथा अकंप विश्वास प्रदान करता है।' दीपशिखा प्रतीक है– स्वयं मिटकर दूसरों के कष्टों का निवारण करने की भावना का। जिस प्रकार दीप की शिखा स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देती है, उसी प्रकार स्वयं मिटकर दूसरों को सुखी बनाने की भावना दीपशिखा के गीतों में अभिव्यक्त हुई है। दूसरों को सुखी बनाने की इस भावना को विस्तारित करने के लिए अटूट विश्वास की आवश्यकता है और महादेवी वर्मा इसी विश्वास के दम पर जगत के भीषणतम संघर्षों से जूझ जाने की क्षमता इन पंक्तियों में अभिव्यक्त करती हैं–

दीप मेरे जल अकम्पित,
घुल अचंचल।
सिंधु का उच्छवास घन है,
तड़ित तम का विकल मन है।
भीति क्या नभ है व्यथा का,
आँसुओं से सिक्त अंचल।

महादेवी के गीतों में ऐसे बिंबों की बहुतायत है जो दृश्य रूप या चित्र खड़े करने की बजाय सूक्ष्म संवेदन अधिक जगाते हैं: 'रजत-रश्मियों की छाया में धूमिल घन-सा वह आता' जैसी पंक्तियों में 'वह' को प्रकट करने की अपेक्षा धुँधलाने का प्रयास अधिक है।

महादेवी वर्मा का जन्म 24 मार्च, 1907 को उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद में हुआ था। विवाह के बाद बड़ी प्रतीक्षा और मनौतियों के बाद गोविंद प्रसाद और हेमरानी देवी की प्रथम संतान के रूप में उनका जन्म हुआ, जिसे उनके पितामह बाबू बाँकेबिहारी ने कुलदेवी दुर्गा का अनुग्रह माना और बच्ची को महादेवी नाम दिया। संपन्न परिवार होने के कारण महादेवी को संस्कृत, ब्रज, उर्दू संगीत और चित्रकारी की प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था घर पर की गई। इलाहाबाद से बी.ए. और प्रयाग महिला विद्यापीठ से एम.ए. संस्कृत से पूरा किया और स्कूल-कॉलेज समय से ही इन्हें साहित्यिक आयोजनों में प्रतिभाग करने का अवसर मिलने लगा और मान सम्मान भी खूब मिला। महादेवी वर्मा छोटी उम्र से ही कविता करने लगी थीं। आपकी प्रथम प्रौढ़ रचना 'चाँद' के प्रथम अंक सन 1922 में प्रकाशित हुई। महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, पुरुषोत्तम दास टंडन, राजेंद्र बाबू, प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त, कवीन्द्र रवीन्द्र जी का उनको आशीष मिला और वे सभी उनके प्रेरणा स्रोत बने। महादेवी जी ने अपने अंतरंग मित्रों में सुभद्रा कुमारी चौहान, एरीन बोनीफेक्स, स्यामा नेहरू, चन्द्रावती लखनपाल, सावित्री मुखर्जी, रामेश्वरी घोष को स्वीकारा है।

महादेवी वर्मा बुद्ध के सिद्धातों से प्रभावित थीं और बुद्ध के दु:खवाद की अमिट छाप उनके व्यक्तित्व-कृतित्व में देखने को मिलती है। उन्हीं के शब्दों में "बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दु:खात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था। अवश्य ही दु:खवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा परंतु आज तक उसमें पहलेजन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं, जिनमें मैं उसे पहचानने में भूल नहीं कर पाती। दु:ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो संसार को एक सूत्र में बांधे रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढी तक भी न पहुँचा सके, किंतु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परंतु दु:ख सबको बाँटकर विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-बिंदु समुद्र में मिल जाता है, यही कवि का मोक्ष है।" एक ओर तो महादेवी जी की अगाध संवेदनशीलता बुद्ध की करुणा से अनुप्राणित हैं, दूसरी ओर उनकी वाणी में ऋचाओं की पवित्रता और स्वरों में सामगान का सम्मोहन है। उनकी सहज अभिव्यक्ति आर्ष वचनों के समकक्ष रखी जा सकती है–

अमरता है जीवन का ह्रास,
मृत्यु जीवन का चरम विकास।

उनके इसी स्वरूप पर मुग्ध होकर महाकवि निराला ने दृष्टा के

स्वरों में कहा था–

हिन्दी के विशाल मंदिर की वीणा-वाणी
स्फूर्ति चेतना, रचना की प्रतिमा कल्याणी।

इस नामरूपात्मक विश्व से एकात्म होकर सत्यं शिवं सुन्दरं को वर्ण और वाक् दोनों में बांधने का अद्भुत कौशल दिखाया है। काव्य को चित्रमय और चित्र को काव्यमय बनाने की उनमें अद्भुत क्षमता है। भारतीय कवियों में रवीन्द्रनाथ और महादेवी ने ही काव्यात्मा को रूपायित करने का प्रयास किया है। महादेवी के चित्रांकनों में हलके नीले और श्वेत रंग की प्रमुखता है। उनकी कविताओं में ओस, चाँदनी, नीहार आदि की बहुलता उसी प्रवृत्ति की परिचायक है।

उनकी गृहसज्जा, वेशभूषा, रहन-सहन सभी में श्वेत-प्रियता का प्राधान्य है। उनका निवास भी छोटा-मोटा आश्रम या तपोवन है जहाँ भक्तिन, बूढ़े माली, सुषमा और रामजी के अतिरिक्त सोमा (कुतिया), टिन्नू, खरगोश और अनेकों जीव-जंतु पारिवारिक सौहार्द में डूबे रहते हैं। गिलहरियाँ तो द्वारों के बन्दनवारों और कुर्सियों की हथेलियों पर चलती-फिरती लताओं के समान लहका करती हैं वहीं दूसरी ओर कीकर, पाकर, आम सेमल, कटहल, रबर, नारियल आदि के वृक्ष भी हैं। इसी प्रकार बैठक में प्रवेश करते ही कृष्ण की त्रिभंगी मूर्ति, राम का चित्र, बुद्ध की विद्युच्छाया और ऊपर टैगोर, निराला, प्रसाद और बापू। नीचे पीतल के बड़े थाल में ताम्रकलश और दोनों ओर पंचमुखी दीपक को देखकर ऐसा लगता है कि यहाँ मंदिर के भीतर मंदिर है। साहित्य और संस्कृति के प्रति समर्पित उनका व्यक्तित्व चिंतन की प्रखरता से आलोकित है। साहित्य का मूल्यांकन करते हुए वे कहती हैं– "दर्शन पूर्ण होने का दावा कर सकता है, धर्म अपने निर्भान्त होने की घोषणा कर सकता है परंतु साहित्य मनुष्य की शक्ति-दुर्बलता, जय-पराजय, हास-अश्रु और जीवन-मृत्यु की कथा है। वह मनुष्य रूप से अवतरित होने पर स्वयं ईश्वर को भी पूर्ण मानन अस्वीकार कर देता है।" महादेवी आज हमारे भावलोक के संरक्षक के रूप में चलती-फिरती संस्कृति बन गईं हैं, उनका सम्मान राष्ट्र की तप:पूत साधना का सम्मान है। 11 सितंबर, 1987 को साहित्य की महान साधिका ब्रह्मलीन हो गईं।

कृतियाँ :

काव्य-संग्रह : नीहार; रश्मि; नीरजा; सांध्यगीत; यामा; दीपशिखा; सन्धिनी; गीतपर्व; परिक्रमा; सप्तपर्णा; स्मारिका; हिमालय।

संस्मरण : मेरा परिवार, स्मृतिचित्र, पथ के साथी

रेखाचित्र : अतीत के चलचित्र; स्मृति की रेखाएँ

निबन्ध-संग्रह : श्रृंखला की कड़ियाँ; क्षणदा; साहित्य की आस्था तथा अन्य निबन्ध, संकल्पिता, सम्भाषण

पुरस्कार :

1933 'नीरजा' के लिए सेक्सरिया पुरस्कार (महात्मा गाँधी से प्राप्त)

1943 'स्मृति की रेखाएं' के लिए द्विवेदी पदक

1944 हिंदी साहित्य सम्मेलन का मंगलाप्रसाद पुरस्कार

1954 साहित्य अकादमी, दिल्ली की संस्थापक सदस्या

1956 भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण सम्मान

1982 'यामा' और 'दीपशिखा' के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार

1982 उत्तरप्रदेश सरकार का भारत भारती पुरस्कार

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन; कुमायूं विश्वविद्यालय, नैनीताल; बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस सभी से डी.लिट. की उपाधि से सम्मानित

1988 मरणोपरांत भारत सरकार द्वारा पद्म विभूषण सम्मान

वक्तव्य

आप सभी जानते हैं कि पुरस्कार के लिए साहित्य नहीं लिखा जाता और न कोई पुरस्कार उसे महत्त्वपूर्ण बनाने में समर्थ है, परंतु पुरस्कारों की पृष्ठभूमि में जो सुधीजनों की स्वीकृति होती है वही लेखक के सन्तोष का कारण होती है। कभी-कभी साहित्यकार का अपना युग भी उसे नहीं समझ पाता, पर यह स्थिति भी उसे लेखन से विमुख नहीं कर पाती। वह महाकवि भवभूति के समान ही कह सकता है : 'कालो ह्यं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी'– काल असीम है, पृथ्वी बहुत विस्तृत है। कभी कोई मेरा समानधर्मा उत्पन्न होगा जो मुझे समझ सकेगा।

पर सामान्यतः साहित्यकार किसी शून्य में उत्पन्न न होकर एक विशेष युग विशेष समाज और विशेष परिवेश में उत्पन्न होता है, अतः अपने युग से प्रभावित होना उसके लिए अनिवार्य है। अंतर यही है कि उसमें युगबोध के अतिरिक्त युगांतर बोध भी रहता है। उसकी मानसिकता ऐसी त्रिवेणी है, जिसमें अतीत युगों के शाश्वत जीवन-मूल्यों की गंगा भी है। वर्तमान युग की समस्याओं की उच्छल प्रवाहमयी यमुना भी और अनागत भविष्य की अन्त:सलिला सरस्वती भी। इसी से पार्थिव रूप से साहित्यकार के न होने पर भी उसकी रचना आगत पीढ़ियों को सम्बल देती रहती है।

मैं समझती हूँ, सच्चा साहित्य व्यक्ति को समष्टि से एकाकार करनेवाली निरन्तर गतिमयी कर्मधारा है, अतः उसकी प्रक्रिया का जटिल होना स्वाभाविक है। सम्भवतः इसीलिए भारत की आर्ष वाणी ने कवि की परिभाषा में 'कविर्मनीषी परिभू: स्वयंभू:' कहा है। वह मनीषी होता है, क्योंकि वह सब काल-खण्डों का संकलन करता है, वह समष्टि से एकाकार होने के कारण व्याप्त भी होता है और स्वयंभू भी है, क्योंकि कोई उसकी रचना नहीं करता।

वैदिक वाङ्मय में ईश्वर को कवि की संज्ञा दी गयी है, 'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'– ईश्वर की काव्य-सृष्टि को देखो, जो न मरती है और न पुरानी होती है। इस परिभाषा के अन्तर्गत कम ही कवि आ सकेंगे, परंतु जो आ सकते हैं उनकी रचना जीवन के समान ही शाश्वत और चिर नवीन रहेगी।

आधुनिक युग में साहित्यकार को सबसे कठिन चुनौती विज्ञान से मिली है। विज्ञान भौतिक जगत् के तथ्यों की खोज है, जिसकी प्राप्ति मनुष्य को प्रकृति पर विजयी होने की शक्ति देती है। पर यह शक्ति दिशाहीन और अनियन्त्रित रहती है। उनमें धर्म के समान न

पाप-पुण्य का द्वन्द्व है, न दर्शन के समान सत्य-असत्य का और न समाज के समान उचित अनुचित का। इसी से आधुनिक विकसित देश, विज्ञान से प्राप्त शक्ति को दोधारी तलवार की तरह चला रहा है। उन्होंने ध्वंस को अपनी शक्ति का प्रमाण मान लिया है, अतः विज्ञान की संहारक शक्ति आतंक ही उत्पन्न कर रही है। जीवन के मंगल विधान के लिए मनुष्य में संवेदन की तरलता की आवश्यकता होती है जिसे विज्ञान का ताप सुखा रहा है। यदि मनुष्य में संवेदनशीलता की रागात्मकता नहीं रहेगी तो ध्वंस के ज्वालामुखी पर बैठी मानव जाति किसी भी क्षण समाप्त हो सकती है।

भारत प्राचीन देश है। उसकी विशेषता यह है कि आक्रामक होकर कहीं नहीं गया। वैज्ञानिक साधनों की शोध से पहले ही उसने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना में आस्था रखी है और वह अपने दर्शन, संस्कृति, कला, साहित्य आदि का अक्षय सन्देश लेकर ही दुर्गम पर्वतों और अगाध समुद्रों को पार कर अन्य देशों में पहुँचा है।आज भी उसका संकल्प वही है। आज भी वह जीवन की मांगलिक संजीवनी में विश्वास रखता है, मारक अस्त्र-शस्त्रों में नहीं। भारत की अकिंचन कवयित्री होने के कारण मुझे उत्तराधिकार में वह करुणासिक्त मंगलसाधना प्राप्त है।

मेरा विश्वास है, आज कवि और कविता की प्रासंगिकता अन्य गुणों से अधिक है क्योंकि कविता ही मानव-मन की ऋतु बदल सकती है और वह भौतिक तथ्य को आत्मा के सत्य में परिवर्तित कर उसे सुंदर के माध्यम से शिव तक पहुंचा सकती है। बिना स्नेह, समता, बंधुता और मानव गरिमा के मानव जाति का भविष्य केवल मरण का पर्व है। हर छोटे-बड़े विकसित अविकसित देश के कवि के समक्ष जीवन की जो चुनौती है, उसे स्वीकार करके ही वह मानव जाति का मंगल-विधान कर सकेगा। मेरी कामना अपनी आर्षवाणी में यह है- 'संगच्छध्वं संवदध्वम् संवो मनांसि जानताम्।' अर्थात हमारी गति साथ हो, हमारी वाणी समान हो और हम एक-दूसरे के मन को जानें।

XXXX

('ज्ञानपीठ पुरस्कार - संपादक- बिशन टंडन' ज्ञानपीठ प्रकाशन पुस्तक को इस लेख के लिए आधार बनाया है। संपादक एवं प्रकाशक के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।)

बधाई

1

भारत मूल के सातवीं कक्षा के 13 वर्षीय **फैजान ज़की** ने अमेरिका की प्रसिद्ध स्पेलिंग बी प्रतियोगिता जीती। इस कठिन प्रतियोगिता में प्रायः भारतीय विद्यार्थियों का दबदबा रहा है।

2

केंसर के खिलाफ जंग जीतने वाली थाईलैंड की **ओपाल सुचाता चुआंगश्री** साल 2025 की मिस वर्ल्ड चुनी गई हैं।

कथा-कहानी : एक लघुकथा

जाँच का परिणाम

मनीष

युवा कथाकार, व्यंग्यकार

किसी देश का राजा मधुपर्क खा रहा था।

उसके प्याले में से थोड़ा शहद टपक कर जमीन पर गिर पड़ा। उस शहद को चाटने मक्खियाँ आ गयी।

मक्खियों को इकट्ठी देख छिपकली ललचायी और उन्हें खाने के लिए आ पहुँची। छिपकली को मारने बिल्ली पहुँची।

बिल्ली पर दो-तीन कुत्ते टूटे। बिल्ली भाग गयी और कुत्ते आपस में लड़कर घायल हो गये।

●●

कुत्तों के मालिक अपने-अपने कुत्तों के पक्ष का समर्थन करने लगे और एक दूसरे का दोष बताने लगें। उस पर लड़ाई ठन गयी।

लड़ाई में दोनों ओर की भीड़ बढ़ी और आखिर सारे शहर में बवाल हो गया। दंगाइयों को मौका मिला तो सरकारी खजाना लूटा और राजमहल में आग लगा दी।

राजा ने इतने बड़े उपद्रव का कारण पूछा तो मंत्री ने जाँचकर बताया– भगवन, आप के द्वारा गिराया हुआ थोड़ा-सा शहद ही इतने बड़े दंगे का कारण बना गया है।

पढ़ते-पढ़ाते

देश की सुरक्षा का सच्चा आधार

'क़ानून का शासन' किसी भी देश की रीढ़ है। यह देश के स्थायित्व की 'गारंटी' है। भले ही देश में अनगिनत विचारधाराएँ क्यों न हों लेकिन यदि शासन करने वाला राजनैतिक दल 'क़ानून के शासन' से विचलन बर्दाश्त नहीं करता, तब यह मान लेना चाहिए कि देश सुरक्षित है। जिस भी देश में धार्मिक-सांस्कृतिक विविधता की भरमार है वहाँ राष्ट्रीय एकता और अखंडता सिर्फ़ और सिर्फ़ 'क़ानून के शासन' से ही सुनिश्चित हो सकती है। यह कभी भी हजारों लाखों की संख्या में उपस्थित पुलिस, पैरामिलिट्री और सेना से सुनिश्चित नहीं हो सकती। असल में कानून का शासन संख्याबल, आर्थिक-सामाजिक स्थिति, विचारधारा, जाति, धर्म या लिंग से परे जाकर न्याय का आश्वासन देता है। यही वह आश्वासन है जो हर व्यक्ति और समुदाय में सुरक्षा का एहसास पैदा करता है। और अंत में यही सुरक्षा का एहसास, बिना शर्त राष्ट्र प्रेम को जन्म देता है कानून के शासन की उपस्थिति में देश की अखंडता को कभी नुक़सान नहीं पहुँचाया जा सकता है।

–वंदिता मिश्रा

ग्रोक : जिल्ले इलाही का बीरबल

राकेश अचल

आजकल भारत में 'ग्रोक' का हल्ला है। ग्रोक एक ऐसा चैटबॉक्स है जो आपके हर सवाल का जबाब देता है। बेझिझक देता है। लाजबाब है। हाजिर जबाब है। इन दिनों लोग ग्रोक को अपना गुरू मानने लगे है। ग्रोक एक ऐसा गुरु है जो जाति, धर्म और लिंग भेद से बहुत ऊपर है। ग्रोक ठेठ समाजवादी है। सबके लिए उपलब्ध है। ग्रोक दुनिया में किसी की नहीं सुनता सिवाय अपने मालिक के। भारत के लोग जब राम मंदिर बना रहे थे, कुम्भ में डुबकियाँ लगा रहे थे। तब एलन मस्क ग्रोक को अमली जामा पहना रहे थे।

आपने भी शायद मेरी तरह बचपन में अकबर-बीरबल के किस्से सुने होंगे। मुल्ला नसरुद्दीन की कहानियां सुनी होंगीं। जो हर सवाल का जबाब देने में माहिर थे। बीरबल की बुद्धिमत्ता के सामने मुग़ल-ए-आजम अकबर भी नतमस्तक हो जाते थे। कृत्रिम बुद्धिमत्ता की तकनीक के जमाने में आम जनता अकबर है और ग्रोक बीरबल। बस आप सवाल कीजिये और ग्रोक गुरु पलक झपकते आपके सवाल का जबाब पेश कर देंगे। अभी तक ये काम गूगल गुरु के जिम्मे था लेकिन अब ग्रोक ने गूगल गुरु को भी पछाड़ दिया है। ग्रोक 3 "पृथ्वी का सबसे स्मार्ट एआई" है।

दरअसल आज दुनिया के तमाम मुल्कों में फांसीवादी और तानाशाही प्रवृत्तियां तेजी से सिर उठा रही है। दुनिया के तमाम सत्ता प्रतिष्ठान अपनी जनता के सवालों के जवाब देने के लिए राजी नहीं हैं, ऐसे में ग्रोक-3 के अवतरण ने लोगों को चौंका दिया है। लोग ग्रोक के दीवाने हो गए हैं। ग्रोक वे सब जानकारियाँ दे रहा है जो सत्ता प्रतिष्ठान छुपाने की कोशिश करता है।

ग्रोक अभी भारत, ऑस्ट्रेलिया, फिलीपींस और दो अन्य देशों के लिए ही उपलब्ध है। अमेरिका को ग्रोक की जरूरत नहीं है। चीन की ओर ग्रोक देख नहीं सकता। भारत के नेता ग्रोक से आतंकित हैं क्योंकि ग्रोक दूध का दूध, पानी का पानी करता दिखाई दे रहा है। किसी को लेकर किसी के द्वारा बनाई गई फिल्म प्रतिबंधित की जा सकती है लेकिन ग्रोक 3 को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता क्योंकि ग्रोक किसी और का दास है जिसके घर बड़े-बड़े नेता उसके बच्चों से मिलने जाते हैं।

सरल भाषा में बताएँ तो अब ग्रोक कलिकाल का सबसे बड़ा और प्रामाणिक गुरु है। आज की पीढ़ी को यदि गुरु के बारे में बताया जाएगा तो कहा जाएगा–

ग्रोक ब्रम्हा, ग्रोक विष्णु, ग्रोक देवो महेश्वरा
ग्रोक साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री ग्रोको नम:

ग्रोक कृत्रिम बुद्धि का ऐसा अनूठा उदाहरण है जो आभासी दुनिया के किसी भी मंचपर उयलब्ध किसी भी सूचना का विश्लेषण लेकर आपके सामने उपस्थित हो जाता है, वह भी पलक झपकते। ग्रोक त्रिनेत्र है। ग्रोक आभासी दुनिया पर मौजूद तस्वीरों, वेब सूचनाओं और पीडीएफ फाइलों को पढ़ने में समर्थ है। ग्रोक की तीक्ष्ण बुद्धि का आधार उसका विशाल डाटा संग्रह है। इस समय दुनिया में 400 से अधिक सोशल मीडिया मंच उपलब्ध हैं लेकिन इनमें 20 ही ज्यादा प्रचलन में हैं। ग्रोक-3 इन सबसे ऊपर है। सबसे आगे है। ग्रोक के रहते आपको कोई पप्पू नहीं बना सकता, जैसे कि मीडिया किसी को भी योजनाबद्ध तरीके से बनाता आया है। ग्रोक जनता को पप्पू के बारे में असली और प्रामाणिक सूचनाएं देने में समर्थ है।

प्रश्नाकुल भारतीय समाज के लिए ग्रोक एक अजूबा है। लोग ग्रोक से वे सब सवाल कर रहे हैं जिनका उत्तर उसे प्रतिष्ठानों से नहीं मिल रहा। जनता जितना पक्षी के बारे में सवाल कर उतने की विपक्षी के बारे में। ग्रोक जनता को दोनों की हकीकत बता रहा है।

अब तो दो ही विकल्प हैं– या तो ग्रोक को प्रतिबंधित किया जाये या ग्रोक से समझौता कर लिया जाये। ग्रोक को प्रतिबंधित करना आसान नहीं है क्योंकि ग्रोक उसका जमूरा है जो दुनिया के महाबली का दायाँ हाथ है।

ग्रोक के प्रहार से बचने का दूसरा रास्ता है समझौता करना है। समझौता मतलब उनके भारत में कारोबार का दरवाजा खोलना। या फिर उसकी प्रोग्रामिंग को इस तरह बदल दें कि वह सफेद सच के साथ सफेद झूठ भी बोलने लगे। लेकिन ग्रोक हमारी कठपुतली नहीं है। ग्रोक मस्क के इशारों पर नर्तन करने वाली तकनीक है, जो निर्बाध रूप से सभी को उपलब्ध है। आने वाले दिनों में ग्रोक राजनीति की दशा और दिशा को कितना प्रभावित कर पाएगा कहना कठिन है। लेकिन जहाँ मुद्दों के बजाय मुर्दों पर सियासत हो रही हो वहाँ के लिए ग्रोक एक बड़ी समस्या बनने जा रहे हैं। ग्रोक न औरंगजेब के साथ है और न शिवाजी के साथ।

आप सोच रहे होंगे कि भूलोक के इस नए गुरु का नाम ग्रोक क्यों रखा गया? तो आपको बता दें कि ग्रोक शब्द रॉबर्ट हेनलिन के नोवल 'स्ट्रेंजर इन ए स्ट्रेंज लैंड' से आया है। इसका उपयोग मंगल ग्रह पर पले-बढ़े एक किरदार द्वारा किया जाता है और इसका मतलब किसी चीज को पूरी तरह और गहराई से समझना है। कुल मिलाकर लोग ग्रोक के आगमन से खुश हैं। आप इसे किसी और के बारे में ही नहीं अपने बारे में भी सवाल कर सकते हैं। ग्रोक शायद ही आपको निराश करे! भगवान ग्रोक को लम्बी उम्र दे ताकि ग्रोक प्रश्नाकुल समाज की जिज्ञासाओं को लगातार शांत करता रहे।

सृजन-समय-समालोचना

डॉ. रोहिणी अग्रवाल
(वरिष्ठ लेखक और समालोचक)

अपने वक़्त के साथ बेहद तनावपूर्ण, जटिल और संश्लिष्ट संबंध जीता है रचनाकार। संवेदनशील विश्लेषणात्मक विवेक को तीसरी आंख बनाकर जब वह अपने समय पर दृष्टिपात करता है तो देखता है कि समय लम्हों, सदियों या युगों में बँटे इतिहास का कोई पन्ना भर नहीं है। वह एक ही फ़र्लांग में अतीत-वर्तमान-भविष्य को नापकर जीवन की जीवंत चेतना बन गया है। जिसके एक हाथ में इंसाफ़ का तराजू हो, दूसरे हाथ में नसीहतें और चेतावनियाँ, और तीसरे हाथ में जन्नत की ओर खुलती तमाम सकारात्मक संभावनाओं के द्वार – ऐसे वक्त से बड़ा रचयिता और कौन हो सकता है भला! रचनाकार तो उसका मुँह लगा ज़हीन शागिर्द है। इसलिए वह उससे लेता है दो सीखें– अप्प दीपो भव और चरैवेति चरैवेति।

लिखते चले जाने की बदहवास दौड़ और छपास की हवस– यह रचनाकार होने की निशानी नहीं। रचनाकार होने के लिए ज़रूरी है अपने को तमाम पूर्वाग्रहों, वैचारिक हदबंदियों, भौतिक लिप्साओं और मानसिक संकीर्णताओं से मुक्त कर औदार्य और औदात्य की सतत साधना करना।

मनुष्य से बड़ा कोई नहीं। न ईश्वर, न सत्ता संस्थान, न व्यक्ति का अहम् जो आत्ममुग्धता के काँचघर में बैठकर घृणा, उन्माद और आतंक की नई-नई इबारतें गढ़ता है। पंक्ति के आखिर में खड़े मनुष्य की अस्मिता, संघर्ष, जिजीविषा और स्वप्नाकुलता की गरिमा की रक्षा करने का दायित्व है कलम पर। कलम का काम है एक इकाई के रूप में अपनी मनुष्यता की निरंतर जाँच। फिर अपने परिवेशजन्य निजी अनुभवों, स्मृतियों, आकांक्षाओं और सपनों में परंपरा एवं लोक की जातीय चेतना को गूंथ देना। तब आत्म-विश्लेषण और आत्मान्वेषण की लौ से दीप्त यह रास्ता सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के जिस वृहत्तर प्रांगण में खुलता है, वहाँ सब कुछ देशकालातीत हो जाता है– मनुष्य और मूल्य, धर्म और दर्शन, संवेदना और स्वप्न, वर्ग और विभाजन की नींव पर वर्चस्व के किले खड़े करती अमानुषिकताएँ।

समय को रचने से पहले ज़्यादा ज़रूरी है समय को चीन्हना और समय के साथ अपने अंतर्संबंधों की पड़ताल करना कि क्या वहाँ मन के मौसमों में नफ़रत और उन्माद की उफनती प्रतिशोधपरक आँधियाँ हैं? या फेंस के इधर-उधर पैर लटका कर बैठने की मौकापरस्ती? या फिर प्रतिरोध के केसरिया बाने को अपनी त्वचा का रंग बनाने की बेचैनी? लेकिन समय को 'रचना' क्या इतना आसान है?

रचना तथ्यों, सूचनाओं, घटनाओं से बुने मसालेदार किरदारों के जरिए टुकड़ा भर वर्तमान को दर्ज करने की कलात्मक प्रक्रिया नहीं है। वह वक़्त की बेतरतीब उलझी बारीकियों के भीतर गहरी डुबकी लगाकर पैठने की साधना भी है और वक़्त का अतिक्रमण कर अपने भीतर की हूकों, सवालों और व्याकुलताओं को एक नए स्वप्न का रूप देने की विज़नरी तराश भी है।

तात्कालिकता से मुख़ातिब होकर तत्काल की निःसंग पड़ताल में समयातीत हो जाना– यही रचना है। ऐन फ्रैंक की डायरी की तरह जो अपनी किशोर अल्हड़ता में रोज़नामचा लिखते-लिखते जब बदरंग समय की विद्रूपताओं के भीतर भविष्य के सतरंगी सपने टाँकती है तो मनुष्य के सबसे बड़े गुनहगार के रूप में तमाम दिशाओं से वर्चस्ववादी ताकतें आ-आकर कटघरे में इकट्ठा होने लगती हैं। महान दार्शनिक प्लेटो के 'द रिपब्लिक' की तरह जो सुकरात जैसे सेक्युलर बुद्धिजीवी दार्शनिक की 'हत्या' करने वाली राजनीतिक सत्ता के चरित्र की शिनाख़्त करते-करते अनायास लोकतंत्र में अंतर्निहित ख़तरों की ओर भी संकेत कर जाती है कि कैसे जनता की ज़रा-सी असावधानी और ग़ैरज़िम्मेदाराना मानसिकता के चलते 'डेमोगॉग' की उत्पत्ति को संभव बनाकर डेमोक्रेसी खुद अपने हाथों अपनी मौत का फ़रमान लिखने लगती है।

महात्मा बुद्ध की तरह जो प्रेम, करुणा, शांति और सह-अस्तित्व के साथ अपने-अपने अंधेरों से लड़ने का जीवन-मंत्र मनुष्यता को देते हैं, और निर्मल हवा के झोंके की तरह समय की सबसे बड़ी ज़रूरत बन जाते हैं।

देखती हूँ, उत्सवधर्मी उन्माद, ग्लैमर, प्रचार और 'डबलस्पीक' से बुने हमारे समय ने बहुत-सी संकल्पनाओं को आमूलचूल बदल दिया है; और इस होशियारी से भूसा सने अन्न को पैक्ड फूड की सजावट में हमारी थाली में परोस दिया है कि ठगे जाने की चेतना के बावजूद हम बाग-बाग हैं। ज्ञान को सूचना ने, तर्क को आवेश ने, सत्य को लच्छेदार वक्तृता शैली ने, संवेदना को भावुकता ने, धर्म को पाखंड ने, विज्ञान को अंधविश्वास ने पूरी तरह लील लिया है। बौद्धिक प्रखरता और नैतिक हौसले की टंकार से गूँजती आलोचना को गाली कहकर ज़मींदोज़ कर दिया गया है।

आलोचना ही तो रचनाकार की कलम है– उसकी मेधा, उसकी आंख, उसके पंख। आलोचना ही तो बताती है कि अतीत परिमित है और भविष्य अपरिमित; कि वर्तमान अतीत की अन्यायपूर्ण रंजिशों का 'न्यायालय' नहीं; कि यदि अतीत में विचरण करना ही है तो याद रखना होगा वक्त के साथ बड़े-बड़े दुर्गम किले भी खंडहर हो जाते हैं, लेकिन मौत जिसे छू भी नहीं पाती, वे हैं इंसानी ऊष्मा से महकती बस्तियाँ। तमाम सत्ता-संरचनाएँ और मानवाधिकारों की संरक्षक संस्थाएँ जब स्वार्थजन्य एकजुटता में सामाजिक न्याय-चेतना को अलविदा कहकर 'ईश्वर-ईश्वर' खेलने में रम जाएँ, तब छुपा दिए गए सत्य को उघाड़ने के लिए आलोचना की पैनी धार ही काम आती है।

चूँकि आलोचना समय की सजग बौद्धिक प्रहरी है और किताबें उसकी खुराक, शायद इसलिए शिक्षा-संस्थानों की गुणवत्ता का अवमूल्यन करने के साथ-साथ पुस्तक-संस्कृति और चिंतन-मनन की प्रवृत्ति को भी कमज़ोर किया जाने लगा है। ज़ाहिर है तब रचनाकार का पहला दायित्व यही बनता है कि वह संवेदना में पगी बौद्धिकता और तमाम संस्कृतियों की तमाम बौद्धिक संपदा को बचाने के लिए कमर कस ले। नालंदा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय का जलाया जाना महज एक ऐतिहासिक घटना नहीं, एक बड़ा मानीखेज रूपक है जो आज भी ज्ञान-परंपरा को मटियामेट करने में लगा हुआ है। रचना तभी 'रचना' है जब वह अपने समय में कोई सार्थक हस्तक्षेप कर पाए। मिसाल के तौर पर, अमेरिकी उपन्यासकार रे ब्रैडबरी के उपन्यास 'फॉरेनहाइट 451' जो समय की घातक विडंबनाओं को दर्ज करते-करते जब डिस्टोपिया का रूप लेने लगता है तो अपनी कथ्यगत संवेदना की अंदरूनी परतों में यूटोपिया की हुलसती हरियाली के स्वप्न को भी अंकुरित कर देता है।

आज का समय औसत (mediocrity) के महिमामंडन का समय है। अधीरता और लैक ऑफ कन्सन्ट्रेशन को नई मूल्य-संहिता के केंद्र में लाकर नव-औपनिवेशिक सत्ता-प्रतिष्ठानों ने गंभीर एवं दार्शनिक लेखन के प्रति एक अव्यक्त अरुचि का प्रसार किया है। मोती पाने की चाह में हमने गहराई में डूबना बंद कर दिया है। मोती चुगकर नीर-क्षीर-विवेक पाना तो ज़ाहिर है तब असंभव हो ही जाएगा। बह जाने को हमने आगे बढ़ने का पर्याय बना लिया है। इसलिए राम-रावण की तर्ज़ पर गांधी-गोडसे की बाइनरी बनाने में हमें कोई संकोच नहीं होता, यह जानते हुए भी कि राम के औदात्य के समतुल्य ही था रावण का पांडित्य और आत्म-संयम।

गांधी और गोडसे को बाइनरी में साथ पिरोकर मानो हम दोनों के चारित्रिक वैशिष्ट्य, विचारधारा, मनुष्यता की अवधारणा और मूल्य-दृष्टि में पाए जाने वाले बुनियादी अंतर को भुला देना चाहते हैं।

यहीं से रचनाकार के रूप में लेखक की विचार-यात्रा शुरू होती है। उसे अपनी समूची इयत्ता के साथ आंधियों में भी प्रतिरोध की मशाल को जलाए रखना होगा। मैं बार-बार याद करती हूँ कि क्यों प्लेटो कवि को अपने गणतंत्र से निष्कासित करना चाहते थे। प्रयास करती हूँ कि भावनाओं का उत्तेजन नहीं, भावनाओं का परिष्करण और उन्नयन ही मेरी विचार-यात्रा का पाथेय हो। नॉस्टैल्जिया स्मृतियों का उत्खनन नहीं, भावुकता में लिथड़ी स्मृतियों का निर्लज्ज उपभोग है। मैं लिखती हूँ कि उपभोक्ता संस्कृति के दबावों के विरुद्ध तैरकर उन तमाम साजिशों का पर्दाफाश कर सकूँ जो मनुष्य को बौना, अपंग, असहाय और लोथ बनाती हैं।

लिखती हूँ कि चेता सकूँ, 'वार ऑफ ट्राय' को जीतकर आने वाली यूलिसस की फौज भी जब अपनी मनोहरी जड़ताओं के द्वीप में विचरण करने लगी, तब उसे बस दो ही चीज़ें रास आईं– दूर दिगंत तक गूँजती अपनी ही आवाज़ की प्रतिध्वनि, और कमल-पुष्प की खुराक।

लिखती हूँ कि बता सकूँ, साहित्य लेखक के सुर में सुर मिलाकर कृति को पढ़ना नहीं है। साहित्य एक चेतना है जो पाठक से सह-सर्जक होने की अपील करती है। वह अपेक्षा करती है कि पाठक स्वयं को अपने समय और रचना के समय के खूंटे से मुक्त कर ले ताकि अपनी तमाम बौद्धिक-वैचारिक-मानसिक संपदा के साथ 'निर्भार' होकर अखंड-अनंत समय की विराट-यात्रा पर निकल सके। एक्सप्लोरेशन की इस अद्‌भुत यात्रा में तुलनात्मक मूल्यांकन के नए-नए मानदंड स्थापित कर जाँच सके कि सांस्कृतिक विकास की इस महायात्रा में हमारा क्या देना-पावना रहा है।

लिखती हूँ कि सरपट दौड़ते घोड़े सरीखे वक्त की रास थाम सकूँ। कुत्सित लिप्साओं के राजसूय यज्ञ को यूँ ही निर्विघ्न संपन्न नहीं होने दिया जा सकता है न! ●

पृ. 43 का शेष.....

भी व्याप्त हैं। मुस्लिम बहुल देश इंडोनेशिया में श्री राम आज भी प्रेरक व्यक्तित्व हैं। थाईलैंड में भले ही बौद्ध धर्म की बहुलता हो, परन्तु वहाँ के राजा को राम का वंशज माना जाता है। यही कारण है कि विश्व के कई देशों ने श्री राम से जुड़े विभिन्न प्रसंगों पर डाक टिकट जारी कर उनके कथानक और विचारों को न सिर्फ आत्मसात किया है, बल्कि डाक टिकटों के माध्यम से उन विचारों और आदर्शों को देश-दुनिया के कोने-कोने में प्रचारित-प्रसारित किया है। दुनिया भर में रामायण के विभिन्न प्रसंगों पर जारी डाक टिकटों को सहेजते हुए डाक विभाग ने एक पुस्तक भी जारी की है, जिसमें टीगुआ एंड बारबुडा, ऑस्ट्रेलिया, कम्बोडिया, कनाडा, चेक गणराज्य, फिजी, जिब्राल्टर, गुयाना, ग्रेनाडा, भारत, इंडोनेशिया, लाओस, नेपाल, न्यूज़ीलैण्ड, सिंगापुर, श्रीलंका, सेंट विन्टेस और ग्रेनाडिन्स, थाईलैण्ड, टोगो, संयुक्त राज्य अमेरिका, संयुक्त राष्ट्र सहित 20 देशों के डाक टिकट शामिल हैं।

भगवान श्री राम की महिमा सदियों से भारत ही नहीं वैश्विक स्तर पर व्याप्त है। श्री राम की महिमा को समझना इतना आसान नहीं। एक रोचक लोककथा के अनुसार हनुमानजी श्री राम के हाथ से गिरी अंगूठी खोजते हुए पाताललोक पहुँच जाते हैं तो वहां का राजा उन्हें हजारों अंगूठियाँ दिखाता है। हर अंगूठी एक-सी लगती है। हनुमान जी यह देखकर बेहद आश्चर्यचकित होते हैं। तब पाताल लोक का राजा उन्हें बताता है कि इनमें से हर अंगूठी राम की है, बस वे सभी अलग-अलग समय हुए। जितनी अंगूठियां, उतने राम। वाल्मीकि रामायण में जब ब्रह्मा जी वाल्मीकि को यह ग्रन्थ लिखने का निर्देश देते हैं तो साथ ही एक वरदान भी देते हैं–

यावत् स्थास्यंति गिरयः,
सरितश्च महीतले।
तावत् रामायणकथा,
लोकेषु प्रचरिष्यति॥

अर्थात, जब तक पृथ्वी पर पर्वत हैं, नदियां हैं, तब तक रामायण की कथा, श्री राम का व्यक्तित्व लोक समूह में प्रचारित होता रहेगा। एक तरह से, ब्रह्मा जी का वो वरदान आज भी अमर है। ●

भारत की खोज : दो

(भारत एक संश्लिष्ट सांस्कृतिक इकाई के रूप में अत्यंत प्राचीन, जीवंत और गतिशील उपमहाद्वीप रहा है जिसने अपनी मेधा से विश्व को चमत्कृत और समृद्ध किया है। जहाँ तक राजनीति की बात है तो यहाँ अलग अलग क्षेत्रों में अलग अलग साम्राज्य रहे जिनका वैसा ही इतिहास रहा जैसा अलग अलग देशों का होता है– संघर्ष का, विमर्श का और सहयोग का। ब्रिटिश शासन काल में इसे एक राजनीतिक रूप से संगठित इकाई का स्वरूप मिला जिसे हम अपने देश भारत, हिंदुस्तान और इंडिया के नाम से जानते हैं। जो आज भी अपनी पुरातनता और नवीनता, एकता और अनेकता के अद्भुत संगम के कारण विश्व के लिए एक आश्चर्य है।

इसे समग्रता में देखना, समझना और समेटना सरल नहीं। इसकी सफल और प्रामाणिक कोशिश की पंडित जवाहरलाल नेहरू ने और नाम दिया– 'भारत की खोज'। इसका लेखन उन्होंने भारत के स्वाधीनता आंदोलन में अंग्रेज सरकार द्वारा अहमदनगर किले में जेल रखे जाने के दौरान किया। आज भी भारत को समझने के लिए यह पुस्तक विश्व में समादृत है।

सामान्य पाठकों विशेषकर किशोरों के लिए इसका सार्थक और सरल संक्षिप्तीकरण किया हिन्दी की वरिष्ठ समालोचक और साहित्यकार डॉ. निर्मला जैन ने। हम उनका आभार स्वीकार करते हुए इसे विश्वा के युवा पाठकों के लिए धारावाहिक रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। –सं.)

सिंधु घाटी सभ्यता

भारत के अतीत की सबसे पहली तसवीर उस सिंधु घाटी सभ्यता में मिलती है, जिसके अवशेष सिंध में मोहनजोदड़ो और पश्चिमी पंजाब में हड़प्पा में मिले हैं। इन खुदाइयों ने प्राचीन इतिहास की समझ में क्रांति ला दी है।

एक हड़प्पाई मुहर

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा एक दूसरे से काफ़ी दूरी पर हैं। दोनों स्थानों पर इन खंडहरों की खोज मात्र एक संयोग थी। इस बात में संदेह नहीं कि इन दोनों के बीच भी ऐसे ही बहुत से और नगर एवं अवशेष दबे पड़े होंगे जिन्हें प्राचीन मनुष्य ने बसाया होगा। यह सभ्यता विशेष रूप से उत्तर भारत में दूर-दूर तक फैली थी। संभव है कि भविष्य में भी इस सुदूर अतीत को उद्घाटित करने का काम हाथ में लिया जाए और महत्त्वपूर्ण नयी खोजें की जाएँ। इस सभ्यता के अवशेष इतनी दूर-दूर जगहों पर मिले हैं– जैसे पश्चिम में काठियावाड़ में और पंजाब के अंबाला जिले में। यह विश्वास किया जाता है कि यह सभ्यता गंगा की घाटी तक फैली थी। इसलिए यह केवल सिंधु घाटी सभ्यता भर नहीं उससे बहुत अधिक है।

अब तक हम जो जान सके हैं, उसका बहुत महत्त्व है। सिंधु घाटी सभ्यता, आज जिस रूप में मिली है, उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वह अत्यंत विकसित सभ्यता थी और उस स्थिति तक पहुँचने में उसे हज़ारों वर्ष लगे होंगे। आश्चर्य की बात है कि यह सभ्यता प्रधान रूप से धर्मनिरपेक्ष सभ्यता थी। धार्मिक तत्व मौजूद होने पर भी इस पर हावी नहीं थे। यह भी स्पष्ट है कि यह भारत में बाद के सांस्कृतिक युगों की अग्रदूत थी।

सिंधु घाटी सभ्यता ने फ़ारस, मेसोपोटामिया और मिस्र की सभ्यताओं से संबंध स्थापित किया और व्यापार किया। कुछ दृष्टियों से यह सभ्यता उनकी तुलना में बेहतर थी। यह एक ऐसी नागर सभ्यता थी जिसमें व्यापारी वर्ग धनाढ्य था और उसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। सड़कों पर दुकानों की कतारें थीं और दुकानें संभवत: छोटी थीं।

सिंधु घाटी सभ्यता और वर्तमान भारत के बीच समय के ऐसे कई दौर गुज़रे हैं जिनके बारे में हम बहुत कम जानते हैं। वैसे भी इस बीच असंख्य परिवर्तन हुए हैं। लेकिन भीतर ही भीतर निरंतरता की ऐसी श्रृंखला चली आ रही है जो आधुनिक भारत को छ:-सात हजार पुराने उस बीते हुए युग से जोड़ती है जब संभवत: सिंधु घाटी सभ्यता की शुरुआत हुई थी। यह देखकर अचरज होता है कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में कितना कुछ ऐसा है जो हमें चली आती परंपरा और रहन-सहन की, लोक-प्रचलित रीति-रिवाजों की, दस्तकारी की, यहाँ तक कि पोशाकों के फ़ैशन की याद दिलाता है।

यह बात दिलचस्प है कि भारत अपनी कहानी की इस भोर-बेला में ही एक नन्हे बच्चे की तरह नहीं, बल्कि अनेक रूपों में विकसित सयाने रूप में दिखाई पड़ता है। वह जीवन के तौर-तरीकों से अपरिचित नहीं है। उसने कलाओं और जीवन की सुख-सुविधाओं में उल्लेखनीय तकनीकी प्रगति कर ली है। उसने केवल सुंदर वस्तुओं का सृजन ही नहीं किया बल्कि आधुनिक सभ्यता के उपयोगी और ज़्यादा ठेठ चिह्नों-अच्छे हमामों और नालियों के तंत्र का निर्माण भी किया है।

आर्यों का आना

सिंधु घाटी सभ्यता के ये लोग कौन थे और कहाँ से आए थे इसका हमें अब भी पता नहीं है। यह संभावना भी है कि इनकी संस्कृति इसी देश की संस्कृति थी। उसकी जड़ें और शाखाएँ दक्षिण भारत में भी मिल सकती हैं। कुछ विद्वानों को इन लोगों और दक्षिण भारत की द्रविड़ जातियों एवं संस्कृति के बीच अनिवार्य समानता दिखाई पड़ती है। यदि प्राचीन समय में कुछ लोग भारत में आए भी थे तो

मोहनजोदड़ो का महान स्नानागार

यह घटना मोहनजोदड़ो के समय से कई हज़ार वर्ष पहले घटी होगी। व्यावहारिक दृष्टि से हम उन्हें भारत के ही निवासी मान सकते हैं।

सिंधु घाटी की सभ्यता के बारे में कुछ लोगों का कहना है कि उसका अंत अकस्मात किसी ऐसी दुर्घटना से हो गया, जिसकी कोई व्याख्या नहीं मिलती। सिंधु नदी अपनी भयंकर बाढ़ों के लिए प्रसिद्ध है जो नगरों और गाँवों को बहा ले जाती है। यह भी संभव है कि मौसम के परिवर्तन से धीरे-धीरे ज़मीन सूखती गई हो और खेतों पर रेगिस्तान छा गया हो। मोहनजोदड़ो के खंडहर अपने आप में इस बात का प्रमाण हैं कि बालू की तह पर तह जमती गई, जिससे शहर की ज़मीन की सतह ऊँची उठती गई और नगरवासियों को मजबूर होकर पुरानी नीवों पर ऊँचाई पर मकान बनाने पड़े। खुदाई में निकले कुछ मकान दो या तीन मंज़िले जान पड़ते हैं। वे इस बात का सबूत हैं कि सतह के ऊँचे उठने के कारण समय-समय पर उनकी दीवारें भी ऊँची उठाई गई हैं। हम जानते हैं कि सिंध का सूबा पुराने समय में बहुत समृद्ध और उपजाऊ था, पर मध्ययुग के बाद वह ज्यादातर रेगिस्तान रह गया।

इसलिए यह मुमकिन है कि मौसमी परिवर्तनों ने उन इलाकों के निवासियों और उनके रहन-सहन की पद्धति को प्रभावित किया हो। लेकिन मौसम के परिवर्तनों का प्रभाव दूर-दूर तक फैली इस नागर सभ्यता के अपेक्षाकृत छोटे से हिस्से पर पड़ा होगा। हमारे पास इस बात पर विश्वास करने के कारण तो हैं कि यह सभ्यता गंगा घाटी तक या संभवत: उससे भी दूर तक फैली थी पर इस बात का फ़ैसला करने के लिए हमारे पास पर्याप्त आँकड़े नहीं हैं। वह बालू जिसने इनमें से कुछ प्राचीन शहरों पर छा कर उन्हें ढक लिया था, उसी ने उन्हें सुरक्षित भी रखा, जबकि दूसरे शहर और प्राचीन सभ्यता के प्रमाण धीरे-धीरे नष्ट होते रहे और समय के साथ खंड-खंड हो गए।

सिंधु घाटी सभ्यता और बाद के काल-खंडों के बीच निरंतर संबंध के साथ ही इस सिलसिले के टूटने के या इसमें अंतराल के प्रमाण भी मिलते हैं। यह टूटना इस बात का भी सूचक है कि बाद में आने वाली सभ्यता भिन्न प्रकार की थी। बाद में आने वाली इस सभ्यता में शुरू-शुरू में संभवत: कृषि की बहुतायत थी गोकि नगर और थोड़ा बहुत शहरी जीवन भी मौजूद था। खेतिहर पक्ष पर ज़ोर शायद उन नवागंतुकों ने दिया होगा, जो आर्य थे और उत्तर - पश्चिमी दिशा से भारत में एक के बाद एक कई बार में आए।

ऐसा माना जाता है कि आर्यों का प्रवेश सिंधु घाटी युग के लगभग एक हज़ार वर्ष बाद हुआ। यह भी संभव है कि इनमें इतना बड़ा समय का अंतर न रहा हो और पश्चिमोत्तर दिशा से भारत में ये कबीले और जातियाँ समय-समय पर आती रही हों और भारत में जज़्ब होती रही हों। सबसे पहला बड़ा सांस्कृतिक समन्वय और मेल-जोल बाहर से आने वाले आर्यों और उन द्रविड़ जाति के लोगों के बीच हुआ जो संभवत: सिंधु घाटी सभ्यता के प्रतिनिधि थे। इसी समन्वय और मेल-जोल से भारतीय जातियों और बुनियादी भारतीय संस्कृति का विकास हुआ जिनमें दोनों सभ्यताओं के तत्व साफ़ दिखाई पड़ते हैं। बाद के युगों में और बहुत-सी जातियाँ आईं। सबने अपना प्रभाव डाला और फिर यहीं घुल-मिलकर रह गए।

प्राचीनतम अभिलेख, धर्म-ग्रंथ और पुराण

सिंधु घाटी सभ्यता की खोज से पहले यह समझा जाता था कि हमारे पास भारतीय संस्कृति का सबसे पुराना इतिहास वेद हैं। वैदिक युग के काल निर्धारण के बारे में बहुत मतभेद रहा है। यूरोपीय विद्वान प्रायः इसका समय बहुत बाद में मानते हैं और भारतीय विद्वान पहले।

आजकल अधिकांश विद्वान ऋग्वेद की ऋचाओं का समय ईसा पूर्व 1500 मानते हैं। पर मोहनजोदड़ो की खुदाई के बाद से इन आरंभिक भारतीय धर्म ग्रंथों को और पुराना साबित करने की प्रवृत्ति बढ़ गई है। वस्तुत: यह हमारे पास मनुष्य के दिमाग की प्राचीनतम उपलब्ध रचना है। मैक्समूलर ने इसे 'आर्य मानव के द्वारा कहा गया पहला शब्द' कहा है।

भारत की समृद्ध भूमि पर प्रवेश करने के समय आर्य अपने साथ उसी कुल के विचारों को लेकर आए थे जिससे ईरान में अवेस्ता की रचना हुई थी। भारत की धरती पर उन्होंने उन्हीं विचारों का पल्लवन किया। वेदों और अवेस्ता की भाषा में भी अद्भुत साम्य है। कहा गया है कि वेद भारत के अपने महाकाव्यों की संस्कृत की अपेक्षा अवेस्ता के अधिक निकट हैं।

वेद

बहुत से हिंदू वेदों को प्रकाशित धर्म-ग्रंथ मानते हैं। उनका असली महत्त्व इस बात का उद्‌घाटन करने के कारण है कि विचारों की आरंभिक अवस्था में मानव मस्तिष्क ने कैसे अपने को व्यक्त किया था। वह मस्तिष्क सचमुच कितना अद्भुत था। वेद की उत्पत्ति 'विद्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है जानना। अतः वेद का सीधा-सादा अर्थ है अपने समय के ज्ञान का संग्रह। उनमें न मूर्ति-पूजा है न देव–मंदिर। वैदिक युग के आर्यों में जीवन के प्रति इतनी उमंग थी कि उन्होंने आत्मा पर बहुत कम ध्यान दिया। वे मृत्यु के बाद किसी प्रकार के अस्तित्व में बहुत अस्पष्ट ढंग से विश्वास करते थे।

पहला वेद यानी ऋग्वेद शायद मानव जाति की पहली पुस्तक है। इसमें हमें मानव-मन के सबसे आरंभिक उद्‌गार मिलते हैं, काव्य-प्रवाह मिलता है और प्रकृति के सौंदर्य और रहस्य के प्रति हर्षोन्माद मिलता है। इसके अलावा हमें मनुष्य के उन साहसिक कारनामों का रिकार्ड मिलता है जो लंबे समय पहले किए गए। यहीं से भारत ने एक ऐसी तलाश आरंभ की जो उसके बाद कभी समाप्त नहीं हुई।

सभ्यता के उषाकाल में ही प्रबल और सहज कल्पना से संपन्न लोग, जीवन में छिपे हुए अनंत रहस्यों को जानने के लिए सजग हुए। उन्होंने अपनी सहज आस्था के कारण प्रकृति के प्रत्येक तत्व और शक्ति में देवत्व का आरोप किया। पर इस सबमें साहस और आनंद का भाव था।

बहुत से पश्चिमी लेखकों ने इस खयाल को बढ़ावा दिया है कि भारतीय लोग परलोक-परायण हैं। मैं समझता हूँ कि हर देश के निर्धन और अभागे लोग एक हद तक परलोक में विश्वास करने लगते हैं– जब तक कि वे क्रांतिकारी नहीं हो जाते। यही बात गुलाम देश के लोगों पर लागू होती है।

हमें भारत में भी और स्थानों की ही तरह विचार और कर्म की दो समानांतर विकसित होती धाराएँ दिखाई पड़ती हैं– एक जो जीवन को स्वीकार करती है और दूसरी जो जिंदगी से बचकर निकल जाना चाहती है। अलग-अलग युगों में कभी बल एक पर होता है और कभी दूसरी पर। परंतु इतना निश्चित है कि वैदिक संस्कृति की मूल पृष्ठभूमि परलोकवादी या इस विश्व को निरर्थक मानने वाली नहीं है।

जब भी भारत की सभ्यता में बहार आई, तब ऐसे हर दौर में जीवन और प्रकृति में लोगों ने गहरा रस लिया, जीने की प्रक्रिया में आनंद लिया। ऐसे ही युगों में कला, संगीत और साहित्य, साथ ही गाने-नाचने की कला, चित्रकला और रंगमंच सब का विकास हुआ। इस बात को ग्रहण करना मुमकिन नहीं है कि कोई संस्कृति या जीवन-दृष्टि, जिसका आधार पारलौकिकता हो या जो विश्व को व्यर्थ मानती हो वह सशक्त और विविधतापूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति के इतने रूपों की रचना कर सकती थी। कोई संस्कृति जो बुनियादी तौर पर पारलौकिकतावादी होगी, वह हज़ारों वर्ष बनी नहीं रह सकती।

भारतीय संस्कृति की निरंतरता

हमें आरंभ में ही एक ऐसी सभ्यता और संस्कृति की शुरुआत दिखाई पड़ती है जो तमाम परिवर्तनों के बावजूद आज भी बनी हुई है। इसी समय मूल आदर्श आकार ग्रहण करने लगते हैं और साहित्य और दर्शन, कला और नाटक तथा जीवन के और तमाम क्रियाकलाप इन आदर्शों और विश्व-दृष्टि के अनुकूल चलने लगते हैं। इसी समय उस विशिष्टतावाद और छुआछूत की प्रवृत्ति का आरंभ दिखाई पड़ता है जो बाद में बढ़ते-बढ़ते असह्य हो जाती है। यही प्रवृत्ति आधुनिक युग की जाति-व्यवस्था है। यह व्यवस्था एक खास युग की परिस्थिति के लिए बनाई गई। इसका उद्देश्य था उस समय की समाज-व्यवस्था को मजबूत बनाना और उसे शक्ति और संतुलन प्रदान करना। किंतु बाद में यह उसी समाज व्यवस्था और मानव-मन के लिए कारागृह बन गई।

फिर भी यह व्यवस्था लंबे समय तक बनी रही। उस ढाँचे के भीतर बँधे रहते हुए भी सभी दिशाओं में विकास करने की मूल प्रेरणा इतनी प्राणवान थी कि उसका प्रसार सारे भारत में और उससे आगे बढ़कर पूर्वी समुद्रों तक हुआ।

इतिहास के इस लंबे दौर में भारत अलग-थलग नहीं रहा। ईरानियों और यूनानियों से, चीनी और मध्य एशियाई तथा अन्य लोगों से उसका संपर्क बराबर बना रहा। तीन-चार हज़ार वर्षों का यह सांस्कृतिक विकास और उसका अटूट सिलसिला अद्भुत है।

उपनिषद्

उपनिषदों का समय ईसा पूर्व 800 के आसपास से माना जाता है। वे हमें भारतीय-आर्यों के चिंतन में एक कदम और आगे ले जाते हैं और यह एक लंबा कदम है।

उपनिषदों में जाँच-पड़ताल की चेतना और चीज़ों के बारे में सत्य की खोज का उत्साह दिखाई पड़ता है। यह सही है कि सत्य की यह खोज आधुनिक विज्ञान की वस्तुनिष्ठ पद्धति से नहीं की गई, फिर भी उनके दृष्टिकोण में वैज्ञानिक पद्धति का तत्व मौजूद है। वे किसी किस्म के हठवाद को अपने रास्ते में नहीं आने देते। उनका जोर अनिवार्य रूप से आत्म-बोध पर है, व्यक्ति की आत्मा और परमात्मा संबंधी ज्ञान पर है। इन दोनों को मूलत: एक कहा गया है। बाह्य वस्तुजगत को मिथ्या तो नहीं कहा गया पर उसे सापेक्ष रूप में सत्य कहा गया है– आंतरिक सत्य के एक पहलू के अर्थ में।

उपनिषदों का सामान्य झुकाव अद्वैतवाद की ओर है और सारे

दृष्टिकोण का इरादा यही मालूम होता है कि उस समय जिन मतभेदों के कारण भयंकर वाद-विवाद हो रहे थे उन्हें किसी तरह कम किया जाए। यह समंजन का रास्ता है। जादू-टोने में दिलचस्पी या उसी किस्म के लोकोत्तर ज्ञान को सख्ती से निरुत्साहित किया गया है और बिना सच्चे ज्ञान के कर्म-कांड और पूजा-पाठ को व्यर्थ बताया गया है।

उपनिषदों की सबसे प्रमुख विशेषता है सच्चाई पर बल देना। उपनिषदों की मशहूर प्रार्थना में प्रकाश और ज्ञान की ही कामना की गई है–'असत् से मुझे सत् की ओर ले चल। अंधकार से मुझे प्रकाश की ओर ले चल। मृत्यु से मुझे अमरत्व की ओर ले चल।' बार-बार हमें एक बेचैन मन झाँकता दिखाई पड़ता है जो निरंतर किसी खोज में किसी प्रश्न का उत्तर पाने में लगा है। ऐतरेय ब्राह्मण में इस लंबी अनंत अनिवार्य यात्रा के बारे में एक स्तोत्र है। हर श्लोक का अंत इस टेक से होता है– 'चरैवेति, चरैवेति', हे यात्री, इसलिए चलते रहो, चलते रहो।'

व्यक्तिवादी दर्शन के लाभ और हानियाँ

उपनिषदों में बराबर इस बात पर जोर दिया गया है कि कारगर रूप से प्रगति करने के लिए ज़रूरी है कि शरीर स्वस्थ हो, मन स्वच्छ हो और तन-मन दोनों अनुशासन में रहें। ज्ञानार्जन या और किसी भी तरह की उपलब्धि के लिए संयम, आत्मपीड़न और आत्मत्याग ज़रूरी है। इस प्रकार की तपस्या का विचार भारतीय चिंतन में सहज रूप से निहित है। गांधी जी के नेतृत्व में जिन जनांदोलनों ने भारत को हिला दिया उनके पीछे जो मनोवृत्ति काम करती रही है उसकी सही समझ के लिए इस विचार को समझना ज़रूरी है।

भारतीय आर्य अपने से भिन्न औरों के विश्वासों और जीवनैलियों के प्रति चरम सहनशीलता के कारण उन झगड़ों को बचाते रहे जो अक्सर समाज को खंड-खंड कर देते हैं। उन्होंने एक तरह का संतुलन बनाए रखा। एक व्यापक ढाँचे के भीतर रहते हुए भी लोगों को अपनी पसंद की ज़िंदगी बसर करने की काफ़ी छूट देकर उन्होंने एक प्राचीन और अनुभवी जाति की समझदारी का परिचय दिया। उनकी ये उपलब्धियाँ बहुत अनोखी थीं।

लेकिन उनके इसी व्यक्तिवाद का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने मनुष्य के सामाजिक पक्ष पर, समाज के प्रति उसके कर्तव्य पर कम ध्यान दिया। हर व्यक्ति के लिए जीवन बँटा और बँधा हुआ था। उसके मन में एक समग्र समाज की न कोई कल्पना थी, न उसके प्रति कोई दायित्व-बोध था। इस बात का भी कोई प्रयास नहीं किया गया कि वह समाज के साथ एकात्मता महसूस करे। इस विचार का विकास शायद आधुनिक युग में हुआ। किसी प्राचीन समाज में यह नहीं मिलता। इसलिए प्राचीन भारत में इसकी उम्मीद करना गैरमुनासिब होगा। व्यक्तिवाद, अलगाववाद और ऊँच-नीच पर आधारित जातिवाद पर भारत में कहीं अधिक बल दिया जाता रहा। बाद में हमारी जनता का दिमाग इस प्रवृत्ति का बंदी बन गया। हमारे पूरे इतिहास में यह एक बहुत बड़ी कमज़ोरी रही। यह कहा जा सकता है कि जाति-व्यवस्था में सख्ती के बढ़ने के साथ-साथ हमारी बौद्धिक जड़ता बढ़ती गई और जाति की रचनात त्मक शक्ति धुँधलाती चली गई।

भौतिकवाद

हमारा बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि हमने यूनान में, भारत में और दूसरे भागों में भी विश्व के प्राचीन साहित्य के एक बहुत बड़े हिस्से को खो दिया है। यह शायद इसलिए हुआ कि इन ग्रंथों को आरंभ में ताड़-पत्रों पर या भोज-पत्रों पर लिखा गया था। कागज़ पर लिखने का चलन बाद में हुआ। बहुत-सी प्राचीन भारतीय पुस्तकें अब तक भारत में नहीं मिलीं, पर चीनी और तिब्बती भाषा में उनके अनुवाद मिल गए हैं।

जो पुस्तकें खो गई हैं, उनमें भौतिकवाद पर लिखा गया पूरा साहित्य है, जिसकी रचना आरंभिक उपनिषदों के ठीक बाद हुई थी। इस साहित्य का हवाला अब सिर्फ इनकी आलोचनाओं में मिलता है या फिर भौतिकवादी सिद्धांतों के खंडन के विशद प्रयास में। फिर भी, इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भारत में सदियों तक भौतिकवादी दर्शन का प्रचलन रहा और जनता पर उस समय उसका गहरा प्रभाव रहा। राजनीतिक और आर्थिक संगठन पर ई.पू. चौथी शताब्दी में रचित कौटिल्य की प्रसिद्ध रचना अर्थशास्त्र में इसका उल्लेख भारत के प्रमुख दार्शनिक सिद्धांत के रूप में किया गया है।

भारत में भौतिकवाद के बहुत से साहित्य को पुरोहितों और धर्म के पुराणपंथी स्वरूप में विश्वास करने वाले लोगों ने बाद में नष्ट कर दिया। भौतिकवादियों ने विचार, धर्म और ब्रह्मविज्ञान के अधिकारियों और स्वार्थ से प्रेरित विचारों का विरोध किया। उन्होंने वेदों, पुरोहिताई और परंपरा-प्राप्त विश्वासों पर विचार करते हुए यह घोषणा की कि विश्वास को स्वतंत्र होना चाहिए और पहले से मान ली गई बातों या अतीत के प्रमाणों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। उन्होंने हर तरह के जादू-टोने और अंधविश्वास की घोर निंदा की। उनका सामान्य रुख अनेक दृष्टियों से आधुनिक भौतिकवादी दृष्टिकोण जैसा था। वे अपने आपको अतीत की बेड़ियों और बोझ से मुक्त करना चाहते थे- उन तमाम बातों से जो प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देती। साथ ही काल्पनिक देवताओं की पूजा से भी। उनके अनुसार वास्तविक अस्तित्व केवल विभिन्न रूपों में वर्तमान पदार्थ का और इस संसार का ही माना जा सकता है। इसके अलावा न कोई संसार है, न स्वर्ग और नरक है और न ही शरीर से अलग कोई आत्मा। मन एवं बुद्धि और बाकी सब चीजों का विकास बुनियादी तत्वों से हुआ है। नैतिक नियम मनुष्य के द्वारा बनाई गई रूढ़ियाँ मात्र हैं।

अधजले ठुड्डे

डॉ. हंसादीप

आज उसके काम का दूसरा दिन था। बैकयार्ड के रंग-रोगन व झाड़-फूस साफ करवाने के लिए मैंने उसे बुलाया था। गर्मी में बाहर बैठने का आनंद लेने की तैयारी थी। पूरे सात-आठ महीनों की ठिठुरती सर्दियों के बाद मौसम का बदलाव, मन को भी बदल रहा था। आने वाले दिनों में अधिक से अधिक बाहर बैठ कर खुली हवा में साँस लेने के लिए सफाई जरूरी थी। कई लोगों को फोन करने के बाद इसे चुना था मैंने, जिसका नाम था– लीवी।

समय का पाबंद था वह। कल की तरह आज भी ठीक नौ बजे उसकी गाड़ी लग गयी ड्राइव-वे में। साइड के गेट से वह पिछवाड़े आया। आते हुए ड्राइव-वे में पड़ा अखबार उठाता लाया। फ्रंट पेज पर "मैं साँस नहीं ले पा रहा" शीर्षक के नीचे बड़ा-सा फोटो था, उस दृश्य के साथ जब पुलिस का पाँव उस ब्लैक आदमी की गर्दन पर था और वह नीचे दबा हुआ था। विश्वभर में रंगभेद के खिलाफ चल रहे प्रदर्शनों से भरा हुआ था अखबार।

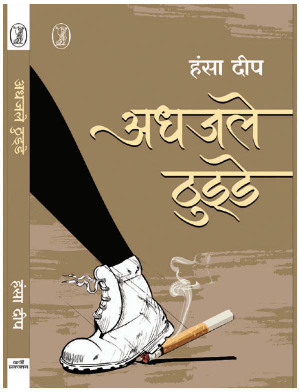

"यू सी, बैड पिपूल इन दिस वर्ल्ड!"

मैंने हामी भरी। "दुनिया में बुरे लोगों की कमी नहीं" यह जुमला मेरी जबान पर हमेशा रहता है। मैं चाहती तो सहानुभूति के दो शब्द कह सकती थी। उसकी मन:स्थिति का भान तो था मुझे, पर अपना काम करवाने की फिक्र ज्यादा थी। उसका ध्यान हटाने के लिए तत्काल उसके हाथ से अखबार ले लिया। अनावश्यक बहस में पड़कर किसी के जख्मों पर नमक लगाने का फायदा ही क्या! आज उसे क्या-क्या करना है, इसकी जानकारी देने लगी।

अपनी सिगरेट के बचे अधजले ठुड्डे को कुचलते हुए सुन रहा था वह। उसके दाँत भिंच रहे थे। अखबार के दृश्य से उभरता उसका गुस्सा उसके पैरों में उतर आया था। वह टुकड़ा तो कब का राख हो कर मिट्टी में मिल गया था लेकिन लीवी अब भी शांत नहीं हुआ था। पैर से कुचलते रहना मंद होती चिंगारी की चमक को बुझाना नहीं था, शायद यह अपने पैरों तले दुनिया को रौंदने का सुकून दे रहा था उसे।

कल जब पहली बार लीवी से मिली तो उसे देखती रह गयी थी मैं। फोन पर कुछ पता नहीं चला था कि किससे बात कर रही हूँ। बात करने वाले की आवाज भारी थी और बहुत सलीके से बात कर रहा था। ठीक नौ बजे गाड़ी आकर रुकी थी। मैंने उसे फोन पर सीधे बैकयार्ड में आने को ही कहा था। जहाँ तक हो सके घर में लोग न घुसें तो ठीक लगता है मुझे। किसी को इस बात का अहसास न हो कि यहाँ एक अकेली महिला रहती है। छोटे-मोटे काम भी करवाने हों तो आने-जाने में, देखने में, लोगों को घर के बारे में बहुत कुछ पता चल जाता है। इसी वजह से मैं अतिरिक्त सावधानी बरतती थी।

सामने से आते हुए उसे देखा था मैंने, वह ब्लैक था। काला रंग और कितना काला हो सकता है, उसके शरीर को देखकर यह पता चला। लंबा और मजबूत, पहली नजर पड़ते ही डर-सा लगने लगा था। उसने भाँप लिया। शायद इस प्रतिक्रिया का आदी हो गया था वह।

कहने लगा – "डोंट लुक एट मी, लुक एट माय वर्क।"

सही कहता है वह। ऐसा कहने की जरूरत पड़ी उसे क्योंकि उसकी शकल ही ऐसी है जिसे देखकर अविश्वास के भाव आ जाएँ। आदमी खुद को पहचानने लगता है। खुद को बहुत अच्छी तरह आँक लेता है। वह जानता है कि कोई उसका चेहरा देखना पसंद नहीं करता। काली चमड़ी और बड़े नथुने वाली नाक। गंजा सिर, हाथों में कामकाजी मटमैले दास्ताने और पैरों में भारी भरकम स्निकर्स। उसकी कद-काठी के सामने नाटे कद की मैं इस तरह खड़ी थी जैसे किसी हाथी के सामने कोई चींटी सिर उठाकर बात कर रही हो। किसी भी क्षण वह हाथी अपनी हथेली से मसल दे तो चींटी को चीखने का भी मौका न मिले और दुनिया से अलविदा कह जाए। उसके व्यक्तित्व से बाहर आने में कुछ पल लगे थे मुझे। न जाने किस देश से उसकी जड़ें जुड़ी हुई थीं, पर उसके तेवर साफ दिखाई दे रहे थे। एक कुशल कारीगर के तेवर। बेईमानी की मिठास नहीं, ईमानदारी की तल्ख झलक दिखी थी।

"एक बार मेरा काम देख लो फिर किसी और का काम पसंद ही नहीं आएगा तुम्हें", सच ही कहा था उसने। एक दिन में जितना काम निपटाया था, कहीं कोई गुंजाइश नहीं थी कि उससे बेहतर कुछ हो सकता है। उसने अपने काम को अपनी ताकत बनाया। यह कौशल उसे जन्म से नहीं मिला है बल्कि उसने अर्जित किया है, यही कहना चाहता था वह। अपनी चमड़ी का रंग तय करना उसके हाथों में नहीं था। अपनी मोटी और फूली हुई नाक को भी वह आकार नहीं दे सकता था। जिसके लिए वह कुछ कर ही नहीं सकता, वह कैसे उसकी अच्छाई या बुराई का पैमाना हो सकता है। उसका रूप-रंग उसके भीतर की अच्छाइयों को नकार नहीं सकता।

अपने काम के पूरे पैसे लेता है वह। कोई कोताही नहीं। जैसे ही बोलने के लिए मुँह खोलता है उसके सफेद दाँत मुस्कुराते हुए चमकने लगते हैं। लगता है सफेद मोतियों की माला गूँथ दी हो किसीने। मैं उसकी बात सुनते हुए उसके दाँतों की चमक में खो जाती हूँ। और कहीं देखने लायक जगह ढूँढ नहीं पाती आँखें। जानती हूँ कि ऐसा

सोचना उसके प्रति अन्याय है। मुझे रेसिस्ट बना देता है। पर मैं भी क्या करूँ! सफेदी किसे नहीं भाती। या फिर यूँ कहूँ कि आँखों को सफेदी अच्छी लगती है। फिर चाहे वह कागज की हो या चमड़ी की।

मैं भी कोई गोरी चिट्टी तो हूँ नहीं। दूध की धुली हूँ। कहावत नहीं, सचमुच! माँ ने दूध से खूब रगड़-रगड़ कर धोया था मुझे। बचपन में जब माँ मुझे दूध से नहलाती थीं तो जितनी देर मेरे बदन पर दूध रहता था वे प्यार से देखती रहतीं। यही दुआएँ देतीं कि रोज दूध से नहाएगी, ऐसे ही दूध जैसी गोरी हो जाएगी। मैं दूध से नहाती रही। जैसी थी वैसी ही रही पर माँ के नजरिये से कालापन चला गया था, तांबई रंग देकर। वह रंग जो इस विदेशी धरती पर मुझे बहुत सिक्योर करता था। ब्राउन कही जाती थी मैं। न तो काले रंग पर होते अत्याचार सहने पड़ते मुझे, न ही गोरे रंग की तानाशाही का आरोप लगता मुझ पर, न ही चीन से कोरोना लाने की दोषी मानी जाती।

यह भी जानती हूँ कि मुझसे बात करते हुए लोगों की नजर मेरे दाँतों पर भी न जाती होगी। क्योंकि वहाँ तो लीवी के दाँतों जैसी सफेदी नहीं है। चाय और कॉफी के कप को निरंतर झेलते मेरे दाँत मेरे ब्राउन रंग के साथ एकमेक हो गए थे। अगर किसी पैमाने से नापने लगूँ तो लीवी से दस प्रतिशत बेहतर हूँ। मैंने भी कई बार अपने सामने खड़े गोरे लोगों को अपने से बहुत ऊपर पाया था। ग्लानि महसूस की थी। तब मेरे तेवर भी अपने काम की निष्ठा के कारण ही थे।

रिटायर तो अब हुई हूँ लेकिन लीवी की तरह खून के घूँट तो मैंने भी पीए हैं। एक बार नहीं, कई बार। गायों और भैंसों के बीच रहते घोड़ों की चमड़ी लेकर घूमने वाली मैं, रंगों की साजिशों का एक हिस्सा थी- व्हाइट, ब्लैक एंड ब्राउन; श्वेत, अश्वेत और तांबई! गवाही देते हुए अपने देश का वह इतिहास भी अवचेतन में कौंधने लगता, जब अपने ही देश में, अपने ही लोग कुचले गए थे। गोरे पैरों के काले जूतों की तबाही का तांडव! वह तल्खी आज भी भीतर शेष है कहीं।

लीवी अपनी काली चमड़ी का गुस्सा उन सब लोगों पर निकालता जिनकी चमड़ी उससे कई गुना उजली थी। मुझसे उसे किसी प्रकार का कोई बैर नहीं था, खुलकर बात करता। उसे हम दोनों में कुछ समानताएँ दिखती होंगी शायद। तभी तो बेहिचक अपने गुस्से को जाहिर करता।

उसका काम मुझे अच्छा लगने लगा था। बाहर के काम को उसने दो दिन में निपटा दिया तो मुझे लगा कि घर के अंदर भी कई सालों से पुताई नहीं हुई। दीवारें बदरंग होकर अपनी चमक बहुत पहले खो चुकी हैं। अब तो कहीं-कहीं पलस्तर और गिरते रंग के कतरों के साथ अंदर का नंगापन झाँकने लगा है। क्यों न साथ ही साथ यह काम भी करवा लिया जाए। जब वह जाने लगा तब आज के काम के पैसे देकर मैंने उससे अंदर के रंग-रोगन की बात की। उसने एक नजर घर को देखा, अनुमान लगा कर पक्का किया कि यह तीन बेडरूम का मकान है। घर के बाहरी आकार को देखकर अंदरूनी लंबाई–चौड़ाई का आभास था उसे।

वह राजी हो गया। अगली सुबह आते समय रंग के तकरीबन दस डिब्बे, ब्रश, रोलर आदि सामान खरीद कर लाने के लिए उसे पाँच सौ डॉलर दिए। जैसे ही उसने नोट अपनी जेब के हवाले किए तो मुझे लगा कि अब वह लौट कर नहीं आएगा। अकेली महिला को देखकर लूटने का यह अच्छा मौका है उसके पास। लीवी पर, उसके काम पर विश्वास करने के बाद भी मन का डगमग होना विस्मित करता रहा। ऐसे चेहरों पर तो पूरी दुनिया शक करती है और मैं भी तो आखिरकार उसी दुनिया का हिस्सा थी। अपने मन को समझा भी रही थी कि अगर वह नहीं आया तो कोई बात नहीं, पाँच सौ डॉलर के एवज में मुझे अकल तो आएगी।

अगली सुबह उठते ही उसकी प्रतीक्षा होने लगी थी। नौ बजने में एक घंटा बाकी था और मेरी धुकधुकी चालू हो गयी थी। अपनी बेचैनी को दूर करने के लिए सोचा गली के कॉर्नर तक टहल आती हूँ। समय कट जाएगा और ध्यान भी भटक जाएगा। टहलते हुए देखा रोज की तरह आज सब कुछ साफ नहीं है। यहाँ-वहाँ कागज के टुकड़े, पत्तियाँ और खाने की चीजें बिखरी पड़ी हैं। दो-तीन टिम हॉर्टन्स के कॉफी कप भी लुढ़क रहे हैं। कचरे के डिब्बे ठसाठस भरे हुए हैं। ढक्कन बंद न हो पाने से तीखी गंध फैल रही है। आसपास पड़े सिगरेट के ठुड्डे बगैर कुचले फेंके गए लगते हैं। उन्हें देखते हुए एक पल के लिए मेरे कदम थम गए। उन ठुड्डों में मुझे कभी लीवी की, तो कभी अपनी शकल दिखाई दी। एक ब्लैक और एक ब्राउन, जिन्हें कुचलने वाले पैरों को कभी अहसास भी नहीं होता कि वे किसी आदमी को कुचल रहे हैं या सिगरेट के टुकड़े को।

तकरीबन आधा घंटा घूमघाम कर मैं वापस घर आ गयी। चाय नाश्ता करके घड़ी के काँटों पर नजर जाती उसके पहले कुछ आवाजें सुनीं। खिड़की से देखा कि लीवी की गाड़ी आकर रुकी। गाड़ी पार्क करके उसी के जैसे दिखते तीन लोग उसके साथ दरवाजे की ओर बढ़ते चले आ रहे थे। अब तक तो मैं अकेले लीवी से डर रही थी मगर अब तीन और! उसने घंटी बजायी और कहा कि हम यहाँ का काम एक दिन में निपटा देंगे। इसीलिये पूरी टीम काम करेगी।

धड़-धड़ करते वे लोग घर में घुसे तो मेरी साँस धौंकनी की तरह चलने लगी। वे कुल चार और मैं अकेली, अब तो मैं चींटी भी नहीं रही थी। चारों मिलकर एक फूँक में ही मुझे उड़ा सकते थे। बैठक से काम शुरू कर दिया उन्होंने। किचन में बिना मतलब के कुछ तो भी इधर-उधर कर रही थी मैं। टेढ़ी नजर से जायजा लेती जा रही थी कि वे लोग क्या कर रहे हैं। कोई दीवार घिस रहा था, कोई कपड़ा बिछा रहा था, तो कोई डिब्बों से रंग निकाल रहा था। न तो उन्होंने किसी सामान को खिसकाने के लिए बुलाया मुझे, न ही मेरी कोई मदद माँगी। एक के बाद एक रंग के डिब्बे खाली होते रहे और वे एक कमरे से दूसरे कमरे में जाते रहे।

मैं हैरान थी। इतनी तेजी से, इतना अच्छा काम हो रहा था। कमरे रंग-रंगा कर चमकने लगे थे। जो सामान जहाँ था, वापस वहीं रखते जा रहे थे। बीच-बीच में उन्हें कोक, चाय-कॉफी आदि के लिए पूछ रही थी मैं। वे खुश थे। खूब बातें कर रहे थे व ठहाके लगा रहे थे। मुझे भी बीच-बीच में अपनी बातों में शामिल कर रहे थे। बातें करने का उनका बेबाक लहजा मुझे बरबस ही हँसा देता था। लंच का समय हुआ तो वे सब आधे घंटे के लिए गए। लौटकर आए तो मेरे लिये

भी एक पीज़ा की स्लाइस लेकर आए।

मैंने पूछा – "मेरे लिये क्यों!"

लीवी बोला – "बिकॉज़ यू आर वेरी नाइस।"

मैं खिसिया गयी। मेरे अंदर का वह सच छुपाए नहीं छुप रहा था कि "मुझे तो तुम पर जरा भी विश्वास नहीं।"

पीज़ा मुझे बहुत पसंद है। लेकिन न जाने क्यों उस पीज़ा की स्लाइस ने मुझे आकृष्ट नहीं किया। लीवी की भलमनसाहत का आदर करते हुए मैंने उसे फ्रिज में रख दिया यह सोचकर कि बाद में फेंक दूँगी।

तेजी से काम हो रहा था। बीच में दो बार उसने और रंग लाने के लिए पैसे मांगे। हर बार मेरे हाथ से जाते हुए नोट मुझे डरा कर जाते। यही लगता कि अब नहीं आएगा वह। जब वह बाहर जाता तो उसके साथी बाहर घास में बैठ कर सुस्ता लेते। कुछ ही देर में वह लौट आता, मुस्कुराते हुए। लीवी की दूध सी उजली हँसी अब मुझे बहुत अच्छी लगती, मेरे विश्वास को बढ़ाती।

उनका काम खत्म होते-होते शाम के सात बज गए। दो दिन का काम एक दिन में खत्म करके अब वे जाने की तैयारी कर रहे थे। रंग-रोगन के बाद हुई गंदगी को साफ करके हाथ धो रहे थे।

मैंने लीवी को उसके पैसे दिए, टिप भी दी, ताकि वे चारों अच्छी तरह डिनर कर सकें। काम करने वाले का और काम करवाने वाले का रिश्ता अब सहज था। दिनभर घर में उन चारों के ठहाकों की रौनक थी। बहुत हँसाया था मुझे। घर के अंदर की एक-एक चीज़ को लीवी सहित चार लोगों ने देख लिया था, पर अब वैसा कोई डर मुझे कचोट नहीं रहा था। न जाने क्यों मुझे बार-बार यही लग रहा था कि लीवी मुझे पहले क्यों नहीं मिला। कई बार छोटे-मोटे काम करवाने के लिए मुझे बहुत परेशानी उठानी पड़ी है।

जाते हुए मैंने उसे बाहर लॉन में सिगरेट के कश लगाते हुए देखा। बरबस ही मेरे मन में उत्कंठा जागी कि देखूँ तो सही, इस समय सिगरेट के अधजले ठुड्डे को वह कुचलता है या नहीं। उसने वह सिगरेट का टुकड़ा बुझने तक थामे रखा और फिर पास रखे कचरे के डिब्बे में फेंककर, गाड़ी स्टार्ट करके चला गया।

मैंने संतोष की साँस ली कि उसके मन में मेरे लिये कोई गुस्सा नहीं है। मैं अपने मन की बात को दबाकर रख पायी थी। मैंने फ्रिज में से उसका लाया पीज़ा निकाला और गरम करके खाना शुरू किया। मानो लीवी यहीं कहीं कमरे में मौजूद हो और देख रहा हो कि मैंने उसकी ट्रीट का आदर किया। मेरे सामने अब उसके सफेद दाँत ही नहीं उसका पूरा व्यक्तित्व था, उजली किरण से भी उजला। ●

नींव के पत्थर : नानी गोपाल मुखोपाध्याय

जयंत गुप्ता

नानी गोपाल मुखोपाध्याय का जन्म 1895 में हुगली में हुआ था। सरकारी कर्मचारियों के रूप में ब्रिटिश प्रशासन से जुड़े अपने परिवार के बावजूद, नानी गोपाल ने पारिवारिक अपेक्षाओं को दरकिनार करते हुए स्वतंत्रता आंदोलन को अपनाया। 13-14 साल की उम्र में उनकी मुलाकात ज्योतिष चंद्र घोष से हुई, एक ऐसी मुलाकात जिसने उनके अंदर इस आंदोलन के प्रति जुनून जगा दिया। पारिवारिक विरोध के बावजूद, नानी गोपाल ने दृढ़ता से अपनी ब्रिटिश विरोधी गतिविधियाँ जारी रखीं।

अंततः नानी गोपाल ने अपना घर छोड़ दिया और ज्योतिष चंद्र ने उन्हें शिक्षा का प्रचार करने और जागरूकता फैलाने के लिए विभिन्न गाँवों में भेजा। वे कलकत्ता में एक गुप्त समिति के सदस्य बन गए। इस दौरान, पुलिस कमिश्नर के प्रमुख डेनहम अपने दमनकारी तरीकों के लिए जाने जाते थे। 2 मार्च, 1911 को, नानी गोपाल, जो तब एक युवक थे, डलहौजी स्क्वायर पर डेनहम का इंतजार कर रहे थे। उन्होंने डेनहम की ओर एक बम फेंका, और तेजी से भाग निकले। अफसोस की बात है कि बम फटने में विफल रहा। हालांकि, पुलिस ने इस घटना के सिलसिले में नरेंद्रनाथ बंद्योपाध्याय और श्रीशचंद्र घोष को गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद ज्योतिष चंद्र घोष को भी गिरफ्तार कर लिया गया। थोड़े समय बाद, नानी गोपाल को भी हिरासत में ले लिया गया, उन्होंने स्वेच्छा से इस कृत्य की पूरी जिम्मेदारी ली। परिणामस्वरूप, नरेंद्रनाथ और श्रीशचंद्र को रिहा कर दिया गया।

1912 में, 17 साल की कम उम्र में, नानी गोपाल को कुख्यात अंडमान द्वीप पर भेजा गया था। जेल में, उन्होंने कैदियों के साथ किए जाने वाले अमानवीय व्यवहार का पुरजोर विरोध किया। उन्होंने विरोध में भूख हड़ताल शुरू की और उनकी दृढ़ता ने उन्हें कुल 150 दिनों की भूख हड़ताल सहन करने के लिए प्रेरित किया। इस यातना के कारण वे केवल कंकाल बनकर रह गए थे, लेकिन उनका दृढ़ संकल्प अडिग रहा। आखिरकार, उनके साथी कैदियों ने उन्हें खाना फिर से शुरू करने के लिए राजी किया, लेकिन जेलर के अथक उत्पीड़न ने उन्हें कई बार अपनी भूख हड़ताल फिर से शुरू करने के लिए मजबूर किया।

गौरहरि भवन, बल्लीर मोड़ के सामने स्थापित शिला शिलालेख। ऊपर से दूसरे स्थान पर नानी गोपाल मुखोपाध्याय का नाम लिखा है।

लंबे समय तक जेल में रहने के बाद उन्हें वापस मुख्य भूमि पर भेज दिया गया। अपने बाद के वर्षों में, नानी गोपाल मुखोपाध्याय कम्युनिस्ट आंदोलन से जुड़ गए और नए तरीकों से सामाजिक परिवर्तन के लिए अपने जोश को प्रदर्शित किया।

कृषि-संस्कृति की समाधि

डॉ. अमरनाथ

लेखक कलकत्ता विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष है। सम्पर्क–ईई-164/402, सेक्टर-2, साल्टलेक, कोलकाता-700091 ईमेल: amarnath.cu@gmail.com मो. 9433009898

"आदमी हो या पशु, भूख और प्यास से मरने में भी बड़ा वक्त लगता है. 17 दिन के बाद यहीं प्राण निकले थे उसके। इतने दिन तक किसी ने उसे न पानी दिया था न चारा। ऐसा नहीं था कि लोगों का दिल पत्थर का हो चुका था और दया खत्म हो चुकी थी। लोग चाहते थे कि वह जल्दी मर जाय। उसका दुख देखा नहीं जाता था, किन्तु उसके प्राण थे कि निकलते ही नहीं थे।"

यह कहते हुए रामबृंद ने मुझे पास ले जाकर अपनी लाठी के संकेत से उस जगह को दिखाया जहाँ वह बैल असीमित कष्ट सहकर मरा था। रामबृंद ने बताया कि अभी उसकी उमर ज्यादा नहीं थी किन्तु रात-दिन किसानों के डंडे खा-खाकर वह कमजोर हो गया था। फसलें बचाना किसानों की मजबूरी थी। इधर से उधर उसे खदेड़ना पड़ता था। इसी बीच किसी कारण से उसका एक पैर टूट गया और वह जमीन पकड़ लिया। फिर दुबारा नहीं उठ सका। जहाँ गिरा था वहीं बगल में गड्ढा खोदकर उसे समाधि दे दी गई थी। मैंने देखा अब भी वहाँ की फसल जमीन से सटकर दबी हुई थी और लगभग नष्ट हो गई थी। मुझे अपने 'भुअरा' की याद आ गई। भूअर रंग का होने के कारण उसे 'भुअरा' कहकर हम बुलाते थे।

मेरे घर हमेशा दो बैल रहते थे, किन्तु कुछ विपरीत परिस्थितियों के कारण तीन-चार साल तक नाद पर अकेला भुअरा ही था। अकेले उसे भी अच्छा नहीं लगता था किन्तु वह बेजुबान बेचारा क्या करता? हम उसके अकेलेपन को महसूस करते और ज्यादा प्यार करते। मैं हर हफ्ते तालाब में ले जाकर उसे रगड़-रगड़ कर नहलाता। माँ शाम को उसके लिए दो रोटी अलग से बनाती और खुद उसे मुँह में प्यार से खिलाने के बाद ही भोजन करती। उसे 'कौरा' कहा जाता। रात में जबतक उसे 'कौरा' नहीं मिलता वह बैठता ही नहीं था, खड़े-खड़े अगोरता रहता था। खिलाते समय जब उसके चेहरे पर माँ हाथ फेरती तो वह अपना चेहरा माँ के सामने कर देता।

तिरबेनी के घर भी एक ही बैल था। फिर क्या था, एक बैल उनका और एक हमारे भुअरा को जोड़कर जोड़ी बन गई और हल चलने लगा। उन दिनों सुखदेव काका हलवाही करते थे। इस तरह तीनों के घर बराबर हल चलता जैसे दो दिन तिरबेनी के घर, दो दिन मेरे घर और दो दिन सुखदेव काका के घर। बैल का श्रम आदमी के श्रम के बराबर ही माना जाता। सुखदेव काका के यहाँ खेती बहुत कम थी इसलिए उनका काम दो-चार दिन में ही पूरा हो जाता। बाकी दिनों वे हमारे और तिरबेनी के घर हल चलाते और अपनी मजदूरी लेते।

रामबृंद सुगर के मरीज हैं। सुबह चार बजे सीवान में टहलने निकल जाते हैं। मुझे भी हिदायत देते हैं कि छड़ी के बिना मैं घर से बाहर न निकलूँ। आजकल कुत्ते गाँव में कम, सीवान में ही ज्यादा रहते हैं, आठ-दस-बारह के झुंडों में। उन्हें मांस खाने की लत लग गई है। गाँव के नजदीक होने के कारण इस बैल की तो समाधि दे दी गई किन्तु गाँव से दूर सरेह में मरने वाले जानवरों को समाधि देने की फुरसत किसे है? बहुत खतरनाक हो गए हैं ये कुत्ते। आदमखोर। अकेला खाली हाथ पाकर ये किसी को नहीं छोड़ते। समूह में टूट पड़ते हैं। हकीक चाचा तो गाँव के ही थे। सभी पहचानते थे उन्हें। किन्तु अकेला पाकर घर से थोडी दूर पर उन्हें नोच-नोच कर अधमरा कर दिया था गाँव के इन्हीं कुत्तों ने। बहुत इलाज करने पर भी डॉक्टर उन्हें बचा नहीं पाए।

रामबृंद बताते हैं कि घायल पड़े हुए जानवरों को ये कुत्ते नहीं छूते, मरने का इंतजार करते हैं। जानवर जबतक गिरा हुआ है तबतक कुछ नहीं बोलेंगे किन्तु, यदि वह किसी तरह उठकर चलने लगा तो उसे दौड़ा-दौड़ा कर, काटकर उसे जमीन पर गिरा देते हैं और घायल कर देते हैं। सत्रह दिन तक पड़े रहे उस बैल को कुत्तों ने भी नहीं काटा। बड़ी असह्य पीड़ा के बाद मौत आयी थी। घुरुच-घुरुच कर मरना इसे ही कहते हैं।

इस बैल की मौत क्या सिर्फ एक बैल की मौत है? पिछले दस-पंद्रह सालों में तमाम प्रयास करने के बावजूद बैल नामक प्रजाति को हम बचा नहीं पाए। पहले गाँवों में किसानों की हैसियत उनके नाद पर बँधे बैलों से ही आँकी जाती थी। कोई बिरला ही होता जिसके दरवाजे पर बैल न हों। आज मेरे गाँव में किसी के घर भी बैल नहीं है। जैसे-जैसे कृषि में मशीनों का चलन बढ़ा है, बैलों की उपयोगिता घटी है। पिछले एक

रामपुर के बहाने : डॉ. अमरनाथ

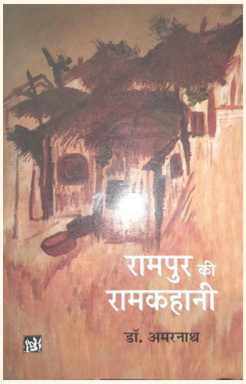

अब तक विश्वा के पाठक डॉ. अमरनाथ के हिन्दी की अस्मिता और उससे जुड़े राष्ट्रीय विमर्शों के बारे में विचार पढ़ते रहे हैं। अभी हाल में उनकी लोकभारती से एक संस्मरणात्मक पुस्तक आई है– रामपुर की रामकहानी।

यह रामकहानी उनकी अपनी कम और अपने जर्जर हो चुके किन्तु कहीं स्वाभिमान और सामाजिकता के अहसास को जीने वाली कृषि व्यवस्था के निर्मम औद्योगीकरण में बदलते कालखंड की पीड़ा की कहानी अधिक है। जिस रामराज्य, गौरवपूर्ण और महान अतीत के लिए किलसते हैं वह वही कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाला युग है जो समस्त अभावों और समस्याओं के बावजूद कहीं न कहीं हमें मूल्यों, कर्म, प्रकृति और समाज से जोड़ता था।

मानव पर यंत्रों के वर्चस्व की पीड़ा का करुण चित्रण इस पुस्तक में आपने किया है जो शुद्ध रूप से अनुभूत है इसलिए बाँधता है।

इस बार आपके नियमित कालम के स्थान पर आपकी इसी पुस्तक से एक अध्याय पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। –सं.)

दशक में तो मानो उनके ऊपर शामत ही आ गई है। गाय यदि बछड़े को जन्म देती है तो वह घर के लिए एक समस्या बनकर ही आता है। कुछ दिन बाद ही वह सीवान के लावारिश जानवरों में शामिल हो जाता है। सदियों का यह साथी आज किसान का सबसे बड़ा शत्रु बना हुआ है। किसान डंडे लेकर रात-दिन उसके पीछे पड़ा रहता है और वह बेचारा तब तक मारा-मारा फिरा करता है जबतक उसकी मौत नहीं आ जाती।

कृषि एक संस्कृति है जो सदियों पहले वजूद में आई। जंगलों से बाहर आकर इन्सान ने जब खेती करना सीखा तो उसका सबसे पहला साथी बना बैल। पशुपालन सभ्य मनुष्य का सबसे पहला व्यवसाय था। पशुपालन में भी गाय पालना सबसे मुफीद था। गाय हमें दूध देती थी, गोबर देती थी जिससे खाद बनती थी और उसके बछड़े बैलगाड़ी चलाने, माल ढोने और हल जोतने के काम आते थे। गाय तो आज भी बैतरणी पार करा देती है।

मैंने रामबृंद से कहा, "आप के घर में तो कोई पशु नहीं है। गोबर की खाद होती ही नहीं है। सिर्फ रासायनिक खादों और कीटनाशकों के बल पर कबतक खेती कर पाएँगे? आप सनई या ढैंचा बोकर हरी खाद बना लीजिए।" उन्होंने तपाक से उत्तर दिया, "सनई बोएँगे तो एक एकड़ की जुताई का ही दो हजार लग जाएगा। फिर एक बार जोतने से तो काम चलेगा नहीं। पहले की तरह अपना हल-बैल तो है नहीं कि अपनी मर्जी से चाहे जितनी बार जोतिए। आज तो हरी खाद बनाने में जितनी लागत लगेगी उतने की उपज ही नहीं बढ़ेगी।" फिर वे लगे अपनी खेती में आने वाले खर्च का ब्योरा देने। जुताई ट्रैक्टर से, बुआई भी ट्रैक्टर से। जमीन में डाई, बाद में यूरिया कम से कम दो बार, कीटनाशकों के बगैर कुछ बचेगा नहीं। सिंचाई के लिए घर में पंपिग सेट तो है किन्तु तेल आसमान छू रहा है। कटाई के लिए कंबाइन वाले कम नहीं लूटते हैं। और जब फसल काँटा पर पहुँचती है तो दाम नहीं मिलता। सरकार कुछ और रेट घोषित करती है, बनिया कुछ और रेट से खरीदता है। कुंतल पीछे चार-पाँच सौ रुपए कम। और उन्होंने सब जोड़कर बता दिया कि खेती आज घाटे का सौदा है।

मैंने कहा, "आप इतना जोड़-घटा रहे हैं और मुनाफे को देखकर फसल बो रहे हैं तो आप किसान कैसे हुए? आप तो व्यापारी हैं।" वे अचकचा गए। कुछ जवाब नहीं सूझा। मैंने आगे भी जोड़ा, "अब तो खेती सीजन आने पर पाँच-छ: दिनों का काम है और उन पाँच-छ: दिनों में से भी कुछ घंटे ही खेती को देने पड़ते हैं। आप खुद सुबह दो घंटा खेत में देकर घर आ जाते हैं और नहा-खाकर दूकान चले जाते हैं।" वे मेरी ओर तिरछी नजर से देखने लगे। दरअसल उन्होंने गाँव के ही चौराहे पर सोने-चांदी की एक दूकान खोल रखी है। दिनभर वहीं रहते हैं। उनका बेटा भी उसमें हाथ बँटाता है। खेती अब उनका मुख्य काम नहीं है। किन्तु यही दशा गाँव में सबकी है।

मुझे अपने बाऊजी याद आ गए। उन दिनों खेती करना किसान का पूर्णकालिक काम था। पूरा घर उसमें लगा रहता था। खेती के लिए बैल रखने पड़ते थे। लोग दूध के लिए गाय या भैंस भी रख लेते थे। उन्हें खिलाने, उनके लिए चारा जुटाने और उनकी सेवा में ही सारा दिन गुजर जाता था। अपनी बैलगाड़ी भी थी, काठ के पहिए वाली। फसल ढोने, खाद गिराने आदि के लिए बैलगाड़ी का इस्तेमाल होता था। खेती में बाऊजी गोबर की खाद ही डालते थे। वे अपनी जरूरत की सभी फसलें उगाते थे। धान और गेहूँ तो पैदा करते ही थे, इसके अलावा भी बाजड़ा, मड़ुआ, कोदो, मकई, साँवाँ, टांगुन आदि ऐसी फसलें भी उगाते थे जिनके अब कहीं दर्शन भी नहीं होते। चरी भी बोते थे पशुओं के लिए। मक्के के खेत में काँकर का फूट देखे मुझे कई दशक हो गए। वे दलहन के लिए अरहर, उड़द, लतरी, मसूरी, मटर, चना सभी थोड़ा-बहुत बोते ताकि हमें किसी चीज के लिए तरसना न पड़े। खेत में जब मटर की फली गदा जाती तो हम खेत में होरहा लगाते और भुनी हुई सोंधी फलियों का स्वाद लेते। चने का भी होरहा बड़ा ही मजेदार होता। तेल के लिए सरसों, तीसी, तिल, गुड़ के लिए गन्ना आदि सब उगाते थे बाउजी। गन्ने से जरूरत भर की भेली (गुड़) बना ली जाती, एक हाँड़ी राब ढाल लिया जाता और बाकी गन्ना घुघुली सुगर फैक्ट्री में भेज दिया जाता।

रामबृंद मुझसे कम से कम दस साल छोटे हैं। बहुत सारी चीजें उनकी स्मृतियों में भी हैं। मैंने उन्हें याद दिलायी कि किस तरह मेरे बाऊजी साल भर खाने के लिए आलू, प्याज, मरचा, लहसुन, अरुई, बंडा पैदा कर लेते थे। मेरे घर के मचान पर सब रख दिया जाता और साल भर चलता। पता नहीं क्यों, अब तो महीने भर में ही सड़ने लगता है। मेरे घर हर तरह की सब्जियाँ पैदा होतीं। गोभी, केला, बैगन, टमाटर, बकला, केंवाच आदि गोएंड़े के खेत में। कोंहड़ा, लौकी, भतुआ, घेंवड़ा, सरपुतिया, बोड़ा, तरोई, कुरदुन, सेम, करैली आदि तो छत पर या झमड़े पर ही इफरात का फलता। क्या नहीं होता था हमारे घर? माँ भतुआ की अदौरी बनाती जो हर मसालेदार सब्जी में पड़ती और उस सब्जी का स्वाद बढ़ जाता। वह पूरे साल भर चलता। पहली सिंचाई के बाद मटर या चने की बढ़ी हुई फुनगी को खोंटकर बनने वाला साग, सरसों और ताजा बथुआ का साग, सनई के फूल का साग अब कहाँ मिलता है? मैं हमेशा खेत से उखाड़कर ताजा मूली ही खाता था और खेत के ताजा सोया-धनिया, लहसुन के पत्ते और हरे मरचे की चटनी। मेरे घर के सामने पिड़ार के भी आठ-दस पेड़ थे। पिड़ार की भुजिया सब्जी बहुत स्वादिष्ट होती और आयरन से भरपूर भी। कड़ाही में डालने के बाद गलने में समय नही लगता। आलू-प्याज के साथ इसकी भुजिया मुझे बेहद पसंद थी। जब जो सब्जी खाने की हमें इच्छा होती हम सीधे खेत से लाते या पेड़ से तोड़ते।

बाऊजी केवल किरासन का तेल और नमक खरीदने बाजार जाते थे। नदुआ बाजार, जो हफ्ते में सिर्फ एक दिन रविवार को लगता था। नदुआ बाजार में एक तरफ सिर्फ बैलों का बाजार लगता था। बहुत बड़ा। मैंने कई बार बाऊजी के साथ वहाँ से बैल खरीद कर लाया है या वहाँ बैल बेचने के लिए ले गया हूँ। नदुआ बाजार अब भी लगता है किन्तु अब वहाँ बैलों की खरीद-बिक्री नहीं होती। बैल की प्रजाति खत्म होने के कगार पर है। बैल और किसान का सदियों पुराना अटूट रिश्ता औद्योगीकरण की भेंट चढ़ गया। इसकी शुरुआत तो नब्बे के दशक में वैश्वीकरण के साथ ही हो गई थी। इस सदी की यह सबसे बड़ी दुर्घटना है। बैल के अभाव में किसान का कोई अस्तित्व है क्या?

मैंने रामबृंद से पूछा, "आप खेती में कितनी मेहनत करते हैं? कुछ देर चुप रहने के बाद उन्होंने जवाब दिया, "मेहनत कहाँ करते है? अब तो सिर्फ देखभाल करनी होती है। पैसा लगता है। काम तो सब मशीनों से होता है।" मैंने जोर देकर कहा, "फिर आप को मैं किसान

नहीं कह सकता। आप सिर्फ व्यापारी हैं। व्यापारी भी मेहनत नहीं करता। जोड़ता-घटाता रहता है, बिचौलिए का काम करता है और सिर्फ मुनाफा कमाता है।"

मैंने उनसे कहा, "याद कीजिए उन दिनों को। किसान के पास कितना काम होता था। पशुओं की सेवा के अलावा सुबह से शाम तक अपने खेतों में वह कुछ न कुछ करता ही रहता था। किसानी एक पूर्णकालिक काम था। जेठ की पहली बरसात की हम बेसब्री से इंतजार करते थे। समय पर पानी नहीं बरसा तो इंद्रदेव को खुश करने के लिए तरह-तरह के उपक्रम करते। कभी-कभी तो गाँव की महिलाएँ रात में निर्वस्त्र होकर हल चलातीं, और जब आकाश में बादल दिखाई देते तो हमारी खुशी का ठिकाना न रहता। हम मानते कि हमारे प्रयास व्यर्थ नहीं गए। बारिश के बाद भी जबतक साइत न हो जाय धरती में बीज नहीं डाला जाता। साइत खरतितिया के बाद ही होता। खरतितिया यानी, अक्षय तृतीया। खरीफ की फसल के श्रीगणेश की तिथि। किसी शुभ दिन को कलश में जल, आम का पल्लव, सिंदूर, दधि, अक्षत आदि के साथ खेत में जाकर पाँच छेव कुदाल से कोड़कर साइत होती। तब जाकर खेतों में हल चलता।

इसके बाद तरह-तरह की फसलें पैदा करने के लिए किसान को काम में जुते रहना पड़ता था। गोबर की खाद खेत में डालना, उसे फैलाना, फिर कई-कई बार की जुताई, बोआई, कुँए में ढेंकली लगाकर अथवा नदी या तालाब के किनारे है तो बेंड़ी से सिंचाई, निराई, पकने पर हँसिया के सहारे हाथ से कटाई, सुइला-बहिँगा या दूर है तो बैलगाड़ी से ढुलाई, खलिहान में बैलों के सहारे दँवरी, ओसौनी, फसल को सुखाकर बखार या डेहरी में रखने तक किसान लगा रहता था। लोहार, कोंहार, बढ़ई, हजाम, बुनकर सभी मिलकर गाँव की पूरी अर्थव्यवस्था सँभाले हुए थे। नब्बे पार करने वाले राम समुझ लोहार की चमड़े की भाथी अब अंतिम साँस गिन रही है।

सच पूछिए तो किसान के पास श्रम ही एक मात्र पूँजी होती थी। उसी के बल पर वह खेती करता था। पैसा खेती में बहुत कम लगता था। इसीलिए अगर दो बैल की खेती है तो आसानी से परिवार का पालन-पोषण हो जाता था। पुश्त-दर पुश्त हम खेती के बलपर ही तो जी रहे थे।

"लेकिन पैदावार बहुत कम होती थी। भादो आते ही कई लोगों के घरों में अनाज घट जाता था। लोग मन्नी लेकर काम चलाते थे। अब पैदावार दोगुनी-तिगुनी होने लगी है।" रामबृंद ने प्रतिकार किया।

"किन्तु आप तो कह रहे हैं कि खेती घाटे का सौदा है? पैदावार बढ़ी है तो घाटे का सौदा कैसे?" उनके पास कोई जवाब नहीं था। मैंने उन्हें समझाया कि घाटे का सौदा इसलिए है कि पैदावार बढ़ने का फायदा किसान को नहीं मिल पा रहा है। लाभ ले रहे हैं ट्रैक्टर-ट्राली, पंपिंग सेट और कंबाइन बनाने वाले; डाई, यूरिया, पोटाश और कीटनाशक बनाने वाले; किसिम-किसिम के बीज तैयार करने वाले और सौ रुपए से भी ऊपर की रेट से डीजल बेचने वाले लोग। सरकार भी इसमें शामिल है। खेती आपकी है जरूर किन्तु उससे लाभ कमा रही हैं बड़ी-बड़ी कंपनियाँ, खेती का मशीनीकरण करके। मैं फिर कहूँगा। किसान का श्रम ही उसकी पूँजी है। कृषि-संस्कृति की आत्मा है श्रम की संस्कृति। चरम मशीनीकरण की इस राक्षसी सभ्यता ने कृषि को श्रम से मुक्त कर दिया है। अब कृषि-संस्कृति बची कहाँ? अपने दिल से पूछिए, क्या आप किसानी करते हैं? याद रखिए, खेती तो रहेगी किन्तु बाँझ हो जाएगी। भूखों मरेंगे लोग।

किसान खाली होने पर भी बैठा नहीं रहता था। बतकही मुँह से होती थी, हाथ काम करता रहता था। खटिया-मचिया बुनने के लिए सुतरी बाजार से नहीं खरीदी जाती थी। सनई-पटुआ हम खुद पैदा करते। बरसात में जब खेत में काम कम रहता तो घरों में हम सुतली कातते और रस्सी बटकर तैयार कर लेते।

महिलाओं के पास क्या पुरुषों से कम काम था? तब न धान कूटने की मशीन थी और न आटा पीसने की। घर पर ही ढेंकी में धान कूटना पड़ता और घर की ही चक्की में आटा पीसना और दाल दरना भी। पशुओं को पालने की जिम्मेदारी ज्यादातर महिलाओं की ही होती थी।

आज खेती की नयी तकनीक ने, मशीनीकरण ने किसान के श्रम को निरर्थक बना दिया है। इसी के साथ बैल का विलुप्त होना सदियों पुरानी कृषि-संस्कृति का विलुप्त होना है। खेती में काम न रह जाने से आज हमारे गाँव के किसानों के बेटे देश-विदेश में जाकर मजदूरी करते हैं। गाँव के हर दूसरे घर का नौजवान सऊदी में मजदूरी कर रहा है। बाकी देश के दूसरे शहरों में हैं। बचे-खुचे सुबह-सुबह बिकने के लिए मुख्यालय की मजदूर-मंडी में चले जाते हैं। गाँव अब किसान नहीं, मजदूर पैदा करता है। उद्योगपतियों को उनके कारखानों के लिए सस्ता मजदूर जो चाहिए।

रामबृंद के भेजे में बात समा रही थी। वे खुद बी.ए. पास हैं। कोई नौकरी नहीं मिली तो गाँव पर रहकर ही व्यवसाय में लग गए। खेती भी कर लेते हैं। गाड़ी ढर्रे पर आ गई है।

मैंने रामबृंद से अपने मन का दर्द बाँटते हुए कहा कि हर फसल कटने के बाद खेतों की पराली फूँक दी जाती है। उसके साथ खेती के लिए उपयोगी केचुओं से लेकर जमीन के दूसरे सभी जीव-जंतु जलकर स्वाहा हो जाते हैं। देशी खाद कभी खेतों में पड़ती नहीं। सिर्फ रासायनिक खादों और कीटनाशकों के सहारे धरती कबतक देश के निठल्लों का पेट भरती रहेगी? अपने गाँव में ही देखिए, देशी आमों के बड़े-बड़े बाग कट चुके हैं। पड़ोस का जंगल खत्म हो रहा है। पेड़ों के नाम पर ठिगने कद के पौधे रोपकर उनकी संख्या गिनाई जाती है और वृक्षारोपण का प्रचार किया जाता है। दूसरी ओर, खेती के काम में इस्तेमाल की जाने वाली तरह-तरह की मशीनों, नये-नये बीजों, रासायनिक खादों, कीटनाशकों आदि को बेचकर उद्योगपति मालामाल हो चुके हैं। सुना है अब खेती में ड्रोन का भी इस्तेमाल होने वाला है।

किसान अपने श्रम के बल पर पुश्त-दर-पुश्त अपने परिवार पालते आ रहे थे। क्षमता से ज्यादा लगान की वसूली और जमींदारों की ज्यादती का बोझ किसानों पर जरूर था किन्तु आज की तरह कर्ज के बोझ से दबकर उनके द्वारा आत्महत्याएँ करने की घटनाएँ मैंने नहीं सुनी थी। आखिर मैं खुद एक किसान-पुत्र हूँ। क्या आज मेरे बाऊजी मुझे पढ़ा पाते? बाऊजी पढ़ाने के साथ मुझे खेती करना भी सिखाते रहते थे। उनके मुँह से ये पंक्तियाँ मैंने अनेक बार सुनी है–

"उत्तम खेती मध्यम बान/निखद चाकरी भीख निदान।"

अब इन पंक्तियों ने अपना अर्थ खो दिया है।

हमारी इस धरती से आगे

प्रस्तुति : चंद्रभूषण

(वरिष्ठ पत्रकार और विविध विषयों के उत्कट जिज्ञासु, बुद्ध चर्या सम्मान से विभूषित)

जैसे किसी अंधेरे घर में बहुत पहले गुम हुई कोई छोटी चीज आप ढूंढ रहे हों और अचानक आपका हाथ उससे छू जाए। बीएचयू-आईआईटी के पूर्व छात्र और अभी कैंब्रिज में एक्सोप्लैनेटरी साइंस के प्रोफेसर निक्कू मधुसूदन ने पहले एस्ट्रोफिजिक्स जर्नल लेटर्स में अपना रिसर्च पेपर छपाकर, फिर कैंब्रिज में ही एक प्रेस कॉन्फ्रेंस को संबोधित करते हुए एक चौंकाने वाली घोषणा की।

उन्होंने कहा कि जेम्स वेब टेलीस्कोप से उनके हालिया प्रेक्षणों ने धरती से बाहर जीवन की तलाश को लेकर की गई अबतक की सारी कोशिशों में सबसे कारगर नतीजे तक पहुंचा दिया है। इस प्रेक्षण का संबंध धरती से 124 प्रकाशवर्ष दूर स्थित एक लाल तारे के ग्रह 'के2-18बी' से संबंधित है। निश्चित रूप से यह ग्रह धरती से बहुत ज्यादा दूर है और इसके बारे में कोई पक्का नतीजा निकालने में अभी बहुत समय लगेगा।

लेकिन निक्कू मधुसूदन का दावा जैविक उत्पत्ति से जुड़ाव वाली गैसों डाई मिथाइल सल्फाइड (डीएमएस) और डाई मिथाइल डाई सल्फाइड (डीएमडीएस) के चिह्न इस ग्रह के वातावरण में खोज लेने का है। इस प्रेक्षण की पुष्टि आगे कोई और टीम भी कर दे तो ज्ञान का यह क्षेत्र एकदम से हरा हो जाएगा। ध्यान रहे, धरती से इतर जीवन के एक संभावित कैंडिडेट के रूप में इस ग्रह पर थोड़ी बातचीत इसी जगह मार्च के अंत में आए एक लेख में की गई थी।

इस प्रेक्षण से जुड़ी जटिलताओं पर हम बाद में आएंगे। पहले इस ग्रह और इसके तारे को लेकर थोड़ी चर्चा करते हैं। केपलर टेलीस्कोप द्वारा खोजा गया तारा के 2-18 हमारे सूरज की तुलना में छोटा और नया है। इसकी मोटाई सूरज की 45 फीसदी और आयु लगभग पौने तीन अरब साल है। ध्यान रहे, हमारे सूरज की उम्र का हिसाब पांच अरब साल के आसपास लगाया गया है। के2-18 की सतह का तापमान भी सूरज के आधे से थोड़ा ही ज्यादा है।

इस तारे के इर्दगिर्द घूमने वाला भीतर से दूसरा ग्रह के2-18बी पृथ्वी से काफी बड़ा है। इसकी त्रिज्या पृथ्वी की ढाई-तीन गुनी है। इस हिसाब से इसका वजन पृथ्वी का 20-25 गुना होना चाहिए था, बशर्ते इसकी बनावट पृथ्वी जैसी ही होती। लेकिन वजन में यह पृथ्वी का साढ़े आठ से दस गुना ही है। इससे एक बात साफ है कि इसका घनत्व पृथ्वी से काफी कम है। ऐसा वहां लोहा कम होने के चलते भी हो सकता है और ग्रह में द्रव-गैस ज्यादा होने से भी।

एक अच्छी बात इस ग्रह के साथ यह है कि यह अपने तारे के गोल्डिलॉक जोन में पड़ता है। यानी पानी वहां द्रव अवस्था में मौजूद हो सकता है। ग्रह का औसत तापमान 23 डिग्री सेल्सियस से 27 डिग्री सेल्सियस के बीच होने का अनुमान लगाया गया है। यह खुद में एक आश्चर्यजनक बात ही है क्योंकि अपने तारे के इर्दगिर्द इसकी कक्षा हमारे सौरमंडल में बुध ग्रह की तुलना में आधी से भी छोटी है। यूं समझें कि अगर यह ग्रह अपनी मौजूदा कक्षा में ही सूरज के इर्दगिर्द घूम रहा होता तो इसकी सतह पर लोहे और अन्य धातुओं की नदियाँ बहतीं और बारिश में भी वहाँ शायद यही सब बरसता। लेकिन इसका तारा उतना गर्म नहीं है, सो जिंदगी की उम्मीद के लिए यहां बड़ी गनीमत है।

2015 में खोजे गए इस ग्रह के वातावरण को अभी तक जितना भी जाना जा सका है, उसके मुताबिक इसकी हवा में हाइड्रोजन की बहुतायत है। 2023 में लिए गए प्रेक्षण में इसमें पानी की भाप के अलावा कुछ कार्बन डायॉक्साइड और मीथेन भी दर्ज की गई थी, लेकिन हाल के प्रेक्षण में भाप की मात्रा पिछली बार से कम आई है। इसका एक कारण प्रेक्षण का पक्का न होना हो सकता है, दूसरा यह कि किन्हीं विशेष स्थितियों में भाप जमकर सतह पर चली जाती हो, फिर बदली हुई स्थितियों में पर्यावरण में लौट भी आती हो। इस बार यहां डीएमएस और डीएमडीएस का दर्ज किया जाना वाकई चौंकाने वाला है, लेकिन स्पेक्ट्रम में इन गैसों की मौजूदगी बहुत सूक्ष्म भी नहीं कही जाएगी।

निक्कू मधुसूदन का कहना है कि समुद्र की सबसे आम वनस्पति और समुद्री खाद्य श्रृंखला की बुनियाद समझे जाने वाले फाइटोप्लैंक्टन द्वारा उत्सर्जित ये गैसें पृथ्वी के वातावरण में जिस अनुपात में पाई जाती है, के2-18बी पर इनकी उपस्थिति उसकी कम से कम हजार गुना प्रेक्षित की गई है। तो क्या एक सुदूर तारे के इर्दगिर्द घूम रही इस दुनिया में समुद्रों की भरमार है, जहां समुद्री जीवन की नींव के रूप में फाइटोप्लैंक्टन की फसलें लहलहा रही हैं?

दरअसल, इस प्रेक्षण की पुष्टि हो जाए तो भी इस नतीजे तक सीधे नहीं पहुंचा जा सकता। दोनों गैसें, डीएमएस और डीएमडीएस अजैविक तरीकों से भी बन सकती हैं। समुद्रों में मिलने वाले गर्म सोतों के इर्दगिर्द भी ये जब-तब निपट अजैविक ढंग से पाई जाती हैं और ऐसी ही कोई कहानी बड़े पैमाने पर के2-18बी पर भी चल रही हो सकती है।

इतनी बातें तो हम धरती पर अपने तजुर्बों से ही कह सकते हैं। लेकिन जिस ग्रह को लेकर हम यहां चर्चा कर रहे हैं, उसका वातावरण

हमारी तरह नाइट्रोजन और ऑक्सीजन का नहीं, मुख्यतः हाइड्रोजन का बना है। इस विस्फोटक गैस की बहुत बड़े पैमाने की मौजूदगी कैसी रासायनिक क्रियाओं को जन्म दे सकती है, इस बारे में हम कुछ भी नहीं जानते। कोई अनुमान लगाने से पहले थोड़ी बात हाइड्रोजन के वातावरण वाले इस अजूबे पर भी होनी ही चाहिए।

किसी ग्रह के वातावरण की बनावट में सबसे बड़ी भूमिका उसका वजन निभाता है। पलायन वेग नाम की राशि ग्रह के वजन से ही निकाली जाती है। धरती के मामले में यह 11.2 किलोमीटर प्रति सेकंड है। रॉकेट से लेकर गैस तक कोई भी चीज पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण तोड़कर इसकी कक्षा से बाहर निकल सके, इसके लिए उसका वेग इतना या इससे ज्यादा होना चाहिए। हाइड्रोजन जैसी हल्की गैसों के अणुओं की औसत रफ्तार तेज होती है और पृथ्वी के वातावरण में पलायन वेग हासिल करके वे धीरे-धीरे रिस जाते हैं। लेकिन के2-18बी पृथ्वी से काफी भारी ग्रह है। उससे बाहर जाना हाइड्रोजन अणुओं के लिए भी आसान नहीं है, लिहाजा वहाँ उनकी उपस्थिति बनी रहती है।

अपने तारे के नजदीक घूमने वाले ऐसे भारी ग्रहों के लिए निक्कू मधुसूदन ने ही 'हाइशन' नाम की एक श्रेणी चलन में ला दी है। एक ऐसा शब्द, जो हाइड्रोजन और ओशन को मिलाकर बना है। लाल तारों के करीब घूमने वाले ऐसे ग्रह, जिनके वातावरण में हाइड्रोजन की शिनाख्त की जा सके और जिनकी सतह पर महासागर मौजूद हों।

अभी पृथ्वी से इतर जीवन की तलाश के लिए वैज्ञानिकों का ध्यान हाइशन खोजने पर ही सबसे ज्यादा है। हमारी आकाशगंगा में कम तापमान वाले लाल तारों का अनुपात अधिक है और उनके करीब घूमने वाले भारी ग्रहों की शिनाख्त आसान है। ऐसे में हाइशन का सैंपल साइज बड़ा हो जाता है। इंसानों जैसे बुद्धिमान प्राणियों की तलाश के लिए ऐसे ग्रह ज्यादा काम के नहीं हैं लेकिन जीवन का कोई न कोई रूप खोज लिए जाने की संभावना वहां ज्यादा है। ●

एक कविता : हारे हुए लोग

दिनेश श्रीनेत

हारे हुए लोग कहाँ जायेंगे

हारे हुए लोगों के लिए कौन दुनिया बसाएगा
उन पराजित योद्धाओं के लिए ,
तमाम शिकस्त खाए लोगों के लिए।

प्रेम में टूटे हुए लोग,
सारी जिंदगी को कहीं दांव लगाकर हारे हुए लोग
थके-हारे लोग, गुमनाम लोग

वो बूढ़े पिता जो अब अकेले रह गए हैं
वो कल्पनाओं में खोया रहने वाला बच्चा
जो परीक्षा में फेल हो गया है
वो लड़की जो तेज कदमों से घर की तरफ लौट रही है
वो बूढ़ा गुब्बारे वाला जो कांपते हाथों से पैसे गिनता है

एक असफल लेखक
मैच हार गया खिलाड़ी
इंटरव्यू से वापस लौटा युवा

और ऐसे तमाम लोग
जिन्हें पता था कि वे सफल हो सकते हैं
मगर उन्होंने असफलताओं से भरा रास्ता चुना,

वो लोग जिन्होंने
हमेशा गलत राह पर चलने का जोखिम उठाया
वो लोग जिन्होंने
गलत लोगों पर भरोसा किया
वो जिन्होंने
चोट खाई, धोखा खाया, ठोकर खाई
गिरे और धूल झाड़कर खड़े हुए
वे कहां जाएंगे?

क्या कोई ऐसी दुनिया होगी
जहां दो हारे हुए इंसान
एक-दूसरे की हथेलियाँ थामे
कई पलों तक खामोश रह सकते हों
अपनी चुप्पी में तकलीफ बांटते हुए।

जिन्होंने इकारस की तरह
सूरज की तरफ उड़ान भरी
और उनके पंख पिघल गए
हारे हुए लोगों के लिए कोई जगह नहीं है
न किसी घर में, न समाज में, न किसी देश में।

क्या जो विजेता थे
वो इनसे बेहतर हैं? बेहतर थे?

नहीं, वही हारा जिसने जिंदगी की अनिश्चितता पर यकीन किया
वही जिसने अनजान रास्तों पर चलने का जोखिम उठाया
जिसने गलती करनी चाही, जो मक्कार चुप्पियों के पीछे छिपा नहीं।
जो बोल सकता था मगर बोला नहीं

उसने वो चुना जिसे चुनने का कोई तर्क नहीं था
सिवाय उसकी आत्मा के
जो हारा आखिर वो भी एक नायक था।

एक पराजित नायक के दर्द को
कौन समझना चाहेगा?

जाएंगे कहाँ सूझता नहीं
चल पड़े मगर रास्ता नहीं
क्या तलाश है कुछ पता नहीं
बुन रहे हैं दिल ख़्वाब दम-ब-दम।

बदलती भारतीय सामाजिक संरचना की चुनौतियाँ

डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

वरिष्ठ शिक्षाविद, समीक्षक और संपादक

भारतीय सामाजिक संरचना में बहुत तेज़ी से बदलाव हो रहे हैं। इतनी तेज़ी से कि हममें से बहुत सारे, विशेष रूप से वे जो पुरानी पीढ़ी से ताल्लुक रखते हैं, उन बदलावों के साथ ताल-मेल बिठाना तो दूर उन्हें समझ भी नहीं पा रहे हैं। वे हतप्रभ हैं। रह-रहकर वे एक ही वाक्य दुहराते हैं – "हमारे ज़माने में तो ऐसा नहीं होता था"। उनकी व्यथा एक हद तक सही भी है। उन्होंने जो सामाजिक ढाँचा देखा था और जिस ढाँचे में उन्होंने अपनी ज़िंदगी का बहुत बड़ा सक्रिय हिस्सा बिताया, वह अब लुप्त हो चुका है। उसकी जगह उस नई व्यवस्था ने ले ली है जिसे समझ पाने और स्वीकार कर पाने में वे अक्षम हैं। आखिर क्या और क्यों हुआ है ऐसा?

मैं जब इन बदलावों को समझने की कोशिश करता हूँ तो कुछ बातें मेरे ध्यान में आती हैं। इनमें से पहली बात है लोगों का गाँवों से निकल कर शहरों का रुख करना। जो कल तक गाँव में थे अब कस्बों में, कस्बों वाले शहरों में और शहरों वाले महानगरों में बसने को उत्सुक और प्रयत्नरत होने लगे हैं। इतना ही नहीं। पहले जहाँ अपने इलाके को छोड़ बाहर जाने की कल्पना भी दुश्वार थी, अब लोग देश छोड़कर विदेश में जा बसने में भी संकोच नहीं करते हैं। इसके मूल में एक बड़ी चीज़ है शिक्षा का प्रसार। लोग पढ़ने लगे हैं, उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगे हैं, बड़े सपने देखने लगे हैं और इन सबके लिए 'बाहर' निकलना ज़रूरी हो गया है। जब नई पीढ़ी बाहर निकल रही है तो स्वभावत: संयुक्त परिवार का ढाँचा चरमरा रहा है। न युवाओं के लिए यह संभव है कि वे माँ-बाप के साथ उन्हीं के परिवेश में रहें और न माँ-बाप के लिए यह संभव है कि वे अपना घर-बार छोड़ बच्चों के साथ जाकर रहने लगें। परिणाम यह कि संयुक्त परिवार टूट कर एकल परिवारों में तब्दील हो रहे हैं। लोगों के गाँव-कस्बों से बाहर निकल कर अन्यत्र स्थापित हो जाने के कारण एक बहुत बड़ा बदलाव जाति व्यवस्था में भी आ रहा है। जाति के कठोर बंधन अब शिथिल हो रहे हैं और बहुत जगहों पर तो वे लगभग अदृश्य ही हो गए हैं। छोटे स्थानों पर जहां हर कोई दूसरों के बारे में सब कुछ जानता था, कौन किसका बेटा है, उसकी जाति-धर्म क्या है, वगैरह, अब महानगरों में और बहुत बार देश से बाहर भी यह सब जानना न संभव रह गया है न आवश्यक। जाति-धर्म-प्रांत वगैरह की पहचानें धूमिल होती जा रही हैं और लोग एक दूसरे से इंसानों की तरह, न कि सवर्ण-दलित, हिंदू-मुसलमान, जैन-वैष्णव आदि की तरह, मिलने जुलने लगे हैं। एक बड़ा बदलाव स्त्री की हैसियत में आया है। शिक्षा के प्रसार और रूढ़ियों के बंधन से मुक्त आज की स्त्री खुली हवा में सांस ले रही है और अपने काम-काज की बड़ी ज़िम्मेदारियाँ निबाहने के साथ-साथ अपनी ज़िंदगी से जुड़े फैसले भी खुद करने लगी है। वह समय अब अतीत हो गया है जब बच्ची को माता पिता के, युवती को पति के और वृद्धा को बेटों के संरक्षण में और उनके नियंत्रण में रहना होता था, आज स्त्रियों का एक बड़ा समूह ख़ुद मुख्तार हो गया है। कहना अनावश्यक है कि पुरानी पीढ़ी के बहुत सारे लोगों को स्त्री की यह नव अर्जित स्वाधीनता पसंद नहीं आ रही है।

असल में पुरानी पीढ़ी का एक टुकड़ा ऐसा है जिसे न बेटियों का पढ़ना पसंद आ रहा है न उनका नौकरी करना और न उनका स्वतंत्र होना। अव्वल तो वे चाहते ही नहीं कि लड़की ज़्यादा पढ़े लिखे, और अगर पढ़ लिख भी जाए तो कम से कम नौकरी तो न करे। और अगर नौकरी कर भी ले तो 'परिवार की मर्यादा और संस्कारों' का पूर्णत: निर्वहन करती रहे। और अगर इसमें से कुछ भी उनकी कल्पनाओं से हटकर हो तो उन्हें आज की स्त्री को गरियाने में, उसके चरित्र पर लांछन लगाने में कोई संकोच नहीं होता। यही बात जाति व्यवस्था को लेकर भी है। अतीत के गाँवों में कुछ ख़ास समुदायों के लोगों से जैसा व्यवहार वे करने के आदी रहे हैं, आज जब उन समुदायों के पढ़े लिखे और उच्च पदस्थ लोगों के साथ वे वैसा ही बर्ताव नहीं कर पाते हैं तो उनके पास 'बड़ा ख़राब समय आ गया है' का रोना रोने के सिवा कोई विकल्प नहीं बचता है। बदलावों को स्वीकार न कर पाने की पीड़ा ख़ुद अपने बच्चों के साथ इस पीढ़ी के रिश्तों में भी देखी जा सकती है। 'हम तो अपने माँ-बाप के सामने ऐसा नहीं कर सकते थे' कहकर वे आज की पीढ़ी, जो निश्चय ही अधिक विवेक संपन्न और अपने अधिकारों के प्रति सजग व मुखर है, के प्रति अपनी नाराज़गी व्यक्त करते हैं। पुरानी पीढ़ी के लिए जितना सहज यह कहकर नई पीढ़ी को दबाना और उससे अपनी बात मनवाना था कि 'क्या इसी दिन के लिए हमने तुम्हें पाल पोसकर बड़ा किया था', उतना आज संभव नहीं रह गया है। अगर कोई यह कहता है तो उसे इसका कोई अप्रिय उत्तर भी सुनने के लिए तैयार रहना होता है। और सही भी है। जीवन कोई सौदा तो है नहीं कि हमने यह किया तो उसके बदले में अब तुम यह करो। असल में बहुत बड़ी तक़लीफ़ यह है कि पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी को उसी ढर्रे पर चलाना चाहती है जिस ढर्रे पर चलकर उसने अपनी ज़िंदगी बिताई है, जबकि नई पीढ़ी अपनी राह ख़ुद बनाना चाहती है। आदर्श स्थिति तो यह हो कि जब बच्चे बड़े हो जाएँ तो माँ-बाप उनके जीवन के निर्णायक न रहकर सलाहकार की भूमिका अंगीकार कर लें। उनके पास व्यापक जीवनानुभव हैं। वे बच्चों को सलाह दे दें, और इसके बाद उनके निर्णय को सहज रूप से स्वीकार करें, भले ही वह निर्णय उनकी सलाह से भिन्न हो।

ये जो बदलाव हमारी सामाजिक संरचना में आ रहे हैं, इनकी अपनी समस्याएँ भी कम नहीं हैं। एक तरफ जहाँ जाति और धर्म की जंजीरें ढीली हो रही हैं वहीं राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की वजह से धार्मिक विद्वेष भी बढ़ रहा है। ऐसा ही बहुत बार जातियों के मामले में भी हो रहा है। निहित स्वार्थी तत्व जातिगत विद्वेष को बढ़ाने में ज़रा भी संकोच नहीं कर रहे हैं। पिछड़ों, दलितों, अल्पसंख्यकों के प्रति वैमनस्य और अवमानना को लगातार बढ़ाया जा रहा है। ऐसा ही स्त्रियों के मामले में भी हो रहा है। पारंपरिक सोच वाले परिवारों में कामकाजी स्त्री को दो पाटों के बीच पिसना पड़ रहा है। असल में तो उस पर बोझ पहले से ज़्यादा आ गया है। पहले उसकी ज़िम्मेदारी घर परिवार तक सीमित थी, अब कामकाज़ी दुनिया में आने से उस पर यह नया बोझ आ गया है, लेकिन उसकी पारंपरिक गृहिणी वाली भूमिका में उसे कोई रियायत नहीं मिली है।

यह जो बदलाव हमारे यहाँ आ रहा है इसकी एक बड़ी परिणति आर्थिक असमानता की वृद्धि के रूप में भी दिखाई दे रही है। पहले जहां समाज के अलग-अलग वर्गों के आर्थिक स्तर में बहुत अधिक भेद नहीं था, और अगर था तो भी वह लगभग अदृश्य था, अब यह खाई बहुत चौड़ी और दृश्यमान हो गई है। नव अर्जित वैभव वाले अपने वैभव प्रदर्शन का कोई मौका नहीं छोड़ना चाहते हैं, और उनमें से ज़्यादातर दूसरों को उनकी छोटी हैसियत का दंश देने में भी कोई संकोच नहीं करते हैं। घर-परिवार, समाज और देश में सर्वत्र परंपरा और आधुनिकता के बीच द्वंद्व बढ़ता जा रहा है। इस द्वंद्व के चलते वैज्ञानिक सोच आहत हो रहा है। बहुत बार तो लगता है कि अब यह इबारत केवल संविधान में बची रह गई है। हमारा जीवन तो घोर रूढ़िवाद और दकियानूसी सोच की गिरफ़्त में आ चुका है। पूरे दृश्य पर वर्चस्व उनका है जो हमें खींच कर पीछे ले जाना चाहते हैं, और हम उनके आगे बेबस हैं। यह देखना बहुत त्रासद है।

समाज कभी जड़ नहीं होता है। वह सतत गतिशील होता है। लेकिन देखने की बात यह है कि उसकी गति की दिशा कौन-सी है। अगर वह दिशा सही नहीं है तो हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि शिक्षा और जन-चेतना के प्रसार के माध्यम से उसमें समुचित बदलाव लाएं। हमारे अपने समाज की बहुत सारी चिंताजनक प्रवृत्तियों के मामले में ऐसा ही किए जाने की ज़रूरत है।

रसिक देहलवी की एक ग़ज़ल

दिल लगाना भी बेमज़ा निकला
बावफ़ा जो था बेवफ़ा निकला

जो समुन्दर दिखाई देता था
एक पानी का बुलबुला निकला

मौत की राह में भटकने को
किसकी साँसों का काफ़िला निकला

उनकी तिरछी निगाह का जादू
हैरतों से भरा हुआ निकला

जिस तरफ़ भी बढे क़दम अपने
तेरे घर का ही रास्ता निकला

कब सहारा दिया ज़माने ने
अज़्मे दिल ही मेरा ख़ुदा निकला

जितना जो ख़ुश है देखने में 'रसिक'
उसका उतना ही ग़म सिवा निकला

सामयिक : शांति-वार्ता

कुँवर नारायण

अल्लाहो अकबर
विनती है भगवन्

अगर दो तो अणुबम
न ये गन न वो गन

ब्रह्मास्त्र दानम्
रॉकेट महानम्

महाशून्य खड्डम
समझ गड्ड-मड्डम्

लड़ाकू विमानम्
न अन्नम् न वस्त्रम्

करें शास्त्र-चर्चा
मगर होड़ शस्त्रम्

हलाहल पचाए
मगर मुँह पे खीसम्

करें शांति वार्ता
मगर दाँत पीसम्

पुराणम् कुरानम्
सभी को प्रणामम्

न साखी न सब्दम्
महायुद्ध ठानम्

ईसा न इस्लाम
मार्क्सम न बुद्धम्

न मजहब न धम्मम्
परम सत्य युद्धम्

परमाणु बम बम
तुम तुम न हम हम

मिटाने औ' मिटने में
हम कम न तुम कम

न पश्चिम न पूर्वम्
नकारम् भविष्यम्

विस्फोट सफलम्
निराकार विश्वम्।

लोकमंगल के कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर

वेदव्यास
(वरिष्ठ साहित्यकार और पत्रकार)

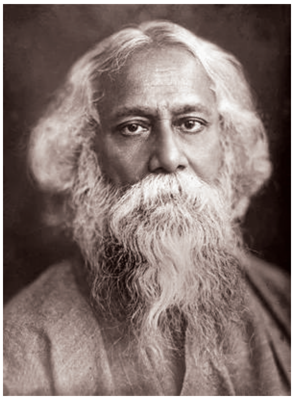

सांस्कृतिक पुनर्जागरण के महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर पुनर्जागरण के ऐसे घोषणा पत्र हैं जिसे कभी समय, समाज और मनुष्य के विकास से अलग करके देखना नितांत असंभव है। जिस तरह सूर, कबीर, तुलसी को भारत की आत्मा का कवि मानकर गाया गया है उसी प्रकार रवीन्द्रनाथ टैगोर को भी आज केवल बांग्लाभाषी लोग अपनी जीवन संस्कृति का उदयगान समझकर जन्म से मृत्यु तक घर-घर में गाते सुनते हैं। 7 मई 1861 को अविभाजित बंगाल में रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म एक जागीरदार परिवार में हुआ था। 80 वर्ष की जीवनधारा में रवीन्द्रनाथ टैगोर ज्ञान और मानव विकास के ऐसे प्रेरणा स्रोत हैं कि पूरी मानवता आज उन्हें विश्व कवि और विश्व मानवता की प्रेरणा के रूप में जानती है।

जिस तरह अंग्रेजी में शेक्सपियर दुनिया का सबसे पठित और अनूदित रचनाकार है, उसी तरह भारतीय भाषाओं के रचनाकारों में रवीन्द्रनाथ टैगोर दिग-दिगंत के गायक हैं। राजस्थानी में जो स्थान गौरव मीरा बाई को, मराठी में तुकाराम, खड़ी बोली में कबीर और तुलसी को तथा दक्षिण भारत में तिरुवल्लुवर और त्याग राज को प्राप्त है वही महत्व बांग्लाभाषा में आज भी कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर को हासिल है।

आपको याद रहना चाहिए कि भारत में अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रवेश बंगाल से ही हुआ था और यही कारण रहा कि भारत में अंग्रेजों के खिलाफ मुक्ति का पहला गीत और संगीत बंगाल में ही रचा गया। यहां मुगल साम्राज्य और अंग्रेज हुकूमत से जनता ने दोहरी दासता का मुक्ति संग्राम छेड़ा था। यह वही समय था जब बंगाल में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, काजी नज़रूल इस्लाम और बंकिमचंद्र चटर्जी जैसे सामाजिक स्वप्नदृष्टा कवि और समाज सुधारक सक्रिय थे। भारत में सांस्कृतिक नवजागरण और पुनर्जागरण ने यहीं से प्रारंभ किया था। यही कारण है कि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने हमें 'जन-गण-मन अधिनायक जय हे' जैसा राष्ट्र गान दिया तो बंकिम चंद्र चटर्जी ने 'वंदे मातरम' सरीखा राष्ट्रगीत अपने 'आनंदमठ' उपन्यास में प्रस्तुत किया। उत्तर भारत में स्वतंत्रता के लिए सैनिक विद्रोह (1857) का सूत्रपात (मंगल पांडे) हो चुका था, और पूरे भारत में धीरे-धीरे भक्ति आंदोलन एक मुक्ति आंदोलन में बदला जा रहा था।

कृपया आप अंतरराष्ट्रीय कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की उस विचार शक्ति को समझें कि जहां 1947 में भी बांग्लादेश (पूर्वी पाकिस्तान) का राष्ट्रगान (आमार सोनार बांग्लादेश) भी कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की आत्मा से ही प्राप्त हुआ था। रवीन्द्रनाथ टैगोर भले ही किसी जागीरदार के घर में पैदा हुए हों तथा संपन्न हों, लेकिन उनका पूरा मन, वचन और कर्म मनुष्य और प्रकृति को ही समर्पित था। इसी कारण वह विश्व मानवता की खोज के पथ प्रदर्शक समझे जाते हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ही भारत की खोज की तरह मनुष्य में मानवता की खोज का काम किया था।

यह वह समय था जब दुनिया में दो विश्वयुद्ध नहीं हुए थे और औद्योगीकरण का युग भी नहीं आया था और एडम स्मिथ की 'वैल्थ ऑफ द नेशन' तथा 'महात्मा गांधी की हिन्द स्वराज' अथवा 'कार्ल मार्क्स की कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' जैसे पुस्तकें भी सामने नहीं थीं। यह ऐसा समय था जब संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म ही नहीं हुआ था और अमेरिका, फ्रांस, रूस तथा चीन जैसे दुनिया के देशों में जन क्रांतियाँ जन्म ले रही थीं और पुनर्जागरण का ताना-बाना बुना जा रहा था। इस दौर में भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण का आधार कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता ही थी जो अध्यात्म, प्रकृति और मनुष्य के बीच लोक-परलोक की दिशा बनाती थीं। इसी समय में 1913 में भारत में पहला नोबेल पुरस्कार साहित्य ऋषि रवीन्द्रनाथ टैगोर की उनकी कृति 'गीतांजलि' पर मिला था और यह भारत में पहला ऐसा सम्मान था जो बांग्ला भाषा की कविताओं के बल पर आया था। अंग्रेजी के महान कवि डब्ल्यू. बी. यीट्स ने इसके अंग्रेजी अनुवाद की प्रस्तावना लिखी थी और पूरा पश्चिम इस काव्य आविष्कार पर भौचक्का था।

यह वह समय था जब दुनिया में 'सात समंदर पार तक' अंग्रेजों के साम्राज्य का सूरज नहीं डूबता था, तब पूरब के भारत देश से रवीन्द्र के कवि का यह प्रादुभार्व आज भी हमें रोमांचित करता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर पर 1941 के बाद पूरी दुनिया में इतना विविध और विशद काम हो चुका है कि स्वतंत्र भारत में महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ टैगोर ही दो ऐसे नाम है दुनिया के सभी देशों में जाने जाते हैं तथा माने जाते हैं तथा जिनसे पुनर्जागरण की सभी संभावनाएँ प्रेरणा लेती हैं। इनकी समकालीन पीढ़ी ने (1850-1950) ही आज दुनिया को मानवता की नई सभ्यता का पाठ पढ़ाया है और पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर को प्रेरणा का शिखर कहा जाता है।

बंगाल के लिए रवीन्द्रनाथ एक कवीन्द्र है और रवीन्द्र संगीत आज वहाँ के घर-घर में आत्म गौरव और पहचान की अनिवार्यता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर कवि, नाटककार, चित्रकार और बहुआयामी सृजन दृष्टा थे। इनके अनेक उपन्यास (गोरा, आँख की किरकिरी, योगा

आदि) तथा नाटक, निबंध, बाल रचनाएँ और ललित कलाओं की कृतियाँ आज भारत की सांस्कृतिक धरोहर हैं। शांति निकेतन (1902) का शिक्षण केंद्र आज रवीन्द्रनाथ टैगोर की महत्ती विरासत है और आधुनिक भारत के लिए शिक्षा, स्वदेशी समाज, पूर्व और पश्चिम, सहकारिता, ग्राम और नगर, सभ्यता का संकट भारतीय संस्कृति, सत्य स्वराज जैसे विषयों पर लिखे इनके निबंध एक राष्ट्र निर्माता के स्वप्न की तरह हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर को लेकर मैं अल्पज्ञानी आज केवल यही कह सकता हूं कि बिना स्वप्न के राजनीति, बिना प्रकृति के विकास, बिना अध्यात्मक के विज्ञान, बिना त्याग के संस्कृति, बिना सत्य और सहकार के मानवता, बिना ज्ञान के मनुष्य और बिना जनकल्याण के 'अस्तित्व और मरण' सब कुछ अपराध है।

आज 21वीं शताब्दी में महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ टैगोर इसीलिए मुझे मानवता और जीवन का पर्याय लगते हैं क्योंकि आज भी मनुष्य और मानवता इस धरती पर शोषित, पीड़ित और अपमानित है तथा सत्य और अहिंसा यहाँ पर लहूलुहान है।।मुझे बांग्ला समाज पर गर्व है कि वह अपने रवीन्द्र को जानता है और मुझे राजस्थान पर अफसोस है कि वह अपनी मीरा बाई को भी नहीं जानता और दादूदयाल को भी नहीं पहचानता। आप यदि कुछ पढ़ेंगे तो आपको पता चलेगा कि रवीन्द्रनाथ टैगोर 21वीं शताब्दी में भी आज पुनर्जागरण के कवि, चिंतक हैं और विज्ञान और भौतिकवाद से आगे की मानवता का निर्माण करते हैं।

दो बहादुर और विवेकशील महिलाएँ

ललिता रामदास का हिमांशी नरवाल को खुला पत्र

हिमांशी और लता रामदास

हिमांशी,

मेरा नाम ललिता रामदास है।

मैं नौसेना अधिकारी की बेटी भी हूं और पत्नी भी।

मेरे पिता और मेरे पति—दोनों भारत की नौसेना के चीफ़ रहे हैं—पहले और तेरहवें क्रम में।

यह पत्र शायद आज जीवित नौसेना की सबसे वरिष्ठ पीढ़ी की एक बेटी/पत्नी की ओर से, एक सबसे नई और युवा नौसेना पत्नी को मेरी ओर से व्यक्तिगत श्रद्धांजलि है।

तुम पर मुझे गर्व है, हिमांशी। तुम्हारे प्रेस से कहे गए शब्दों को बार-बार देखकर मैं स्तब्ध हूं। जिस ताक़त, संतुलन और स्पष्टता से तुमने 22 अप्रैल को पहलगाम में निर्दोष लोगों की हत्या के बाद मुसलमानों और कश्मीरियों को निशाना बनाए जाने के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई—वह अभूतपूर्व है। और हमारे समय की सबसे ज़रूरी पुकार भी।

तुमने कहा, "हमें सिर्फ़ शांति चाहिए", और बिल्कुल सही कहा कि "हमें न्याय भी चाहिए"।

तुम एक आदर्श 'फ़ौजी पत्नी' हो, हिमांशी—सेना की भावना, संविधान और हमारे धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के अनुरूप।

तुम एक ऐसी महिला हो जो अपना मन जानती है, और नौसेना के अफ़सर विनय की साथी के रूप में तुमसे बहादुर कोई हो ही नहीं सकता।

तुमने देश के हर संवेदनशील नागरिक की भावना को स्वर दिया है।

हमें तुम्हारा यह प्रेम और करुणा का संदेश दूर-दूर तक पहुँचाना चाहिए।

शुक्रिया हिमांशी।

दो दिन पहले मैंने तुम्हें एक पत्र भेजा था जो नौसेना प्रमुख (CNS) के सचिवालय के माध्यम से भेजा गया।

उम्मीद है तुम्हें वह मिला होगा।

अब जब मुझे तुम्हारा पता मिला है, तो मैं वह पत्र सीधे करनाल के पते पर भेज रही हूं।

ललिता

हिमांशी ज़िंदाबाद!

नारी शक्ति ज़िंदाबाद!

भारतीय नौसेना ज़िंदाबाद!

जय हिंद – जय जगत!

एशिया ही युद्ध का मैदान क्यों

डॉ. सुधा कुमारी
वरिष्ठ विचारक

धरती के उत्तरी गोलार्द्ध (नॉर्थ हेमिस्फियर) का वातावरण असाधारण युद्ध कौशल से भरा है। यहाँ कई युद्ध, महायुद्ध और दो विश्व युद्ध हो चुके हैं। दूसरा विश्व युद्ध 1945 तक समाप्त हो गया और उसकी विभीषिका को देख फिर किसी की हिम्मत नहीं हुई ऐसे युद्ध की स्थिति में पड़ने की। यूरोप, उत्तर अमेरिका और दक्षिण अमेरिका महाद्वीपों में युद्ध से बचने की सद्बुद्धि और परिपक्वता आ गयी थी। वे कटुता आने पर भी आपस में युद्ध की ओर नहीं बढ़े। पर कहते हैं न कि खिलाड़ी, पहलवान और सैनिक यदि अपना अभ्यास छोड़ दें तो कमजोर हो सकते हैं। इसलिए 'कोल्ड वॉर' यानी बिना युद्ध के लड़ना तो जारी रहा पर केवल तीसरी दुनिया के महाद्वीप के साथ।

यूरोप, उत्तर अमेरिका और दक्षिण अमेरिका महाद्वीपों में अधिकाँश लोग एक धर्म को मानते हैं, अतः धर्म का टकराव युद्ध के रूप में कम दिखता है। लेकिन तीसरी दुनिया, विशेष रूप से एशिया जहां विभिन्न प्रकार के धर्म जैसे हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध बहुतायत में हैं, में धर्म का टकराव बड़े संघर्ष के रूप में दिखता है। पिछले कटु अतीत या शत्रुता को लेकर आए दिन बवाल होता है, गृहयुद्ध के साथ सीमा पर युद्ध की कगार पर भी पहुँच जाता है। यहाँ अपने गौरवमय अतीत और विशाल साम्राज्य को याद कर आए दिन साम्राज्यवाद की ओर बढ़ते कदम दिखाई देते हैं। एशिया के देशों में युद्ध से बचने की कला आने में देर हो रही है।

विश्व युद्ध समाप्त होने पर भी विकसित देशों में हथियारों का उत्पादन और व्यापार बहुत बढ़ा है। युद्ध कला में पारंगत और हथियारों के व्यापारी जिन्हें सदियों से तीसरी दुनिया– एशिया और अफ्रीका-में जाकर लड़ने, उपनिवेश बनाने और वहाँ के दुर्लभ प्राकृतिक साधन का दोहन करने की आदत लग चुकी हो वे करें तो क्या करें? तीसरी दुनिया के अलावा जाएं तो कहाँ जाएँ? अपना सामान और युद्ध के हथियार बेचें तो कहाँ बेचें? सबका ध्यान आर्थिक प्रगति कर रहे भारी जनसंख्या वाले देशों पर केंद्रित रहता है जहाँ अशिक्षा और गरीबी अभी भी विचारणीय विषय हैं।

विकसित देशों का तीसरी दुनिया पर अवांछित ध्यान (अनवांटेड अटेंशन) इन देशों को गरीबी, ऋण, और गुलामी के जाल में फँसा सकता है। यदि ये विकसित देश कृपा करके एशिया में शिक्षा बढ़ाने, व्यापार बढ़ाने और शांतिपूर्वक आर्थिक प्रगति करने पर ध्यान दें और उनके आंतरिक विषय में दखल न दें तो स्थिति सुधर सकती है। लेकिन वे मानते कहाँ हैं? सदा एशिया के आसपास मंडराते रहना और उसके आंतरिक विषय में दखल देना उनकी आदत है। यहाँ आपस में गहरा मनमुटाव होना, युद्ध भड़कना (और भड़काना) काफी आसान काम है। इससे हथियार का व्यापार भी सुचारू रूप से चलता रहता है।

एक सामान्य सी बात है कि पड़ोसी के घर में भी हस्तक्षेप करना आपत्तिजनक माना जाता है। फिर दूर के देशों पर पूरे समय निगरानी करना, आंतरिक हस्तक्षेप करना तो और अधिक आपत्तिजनक बात है। आश्चर्य तो यह देखकर होता है कि कई देश जो प्रजातंत्र की स्थापना के नाम पर तीसरी दुनिया के शासन में दखल देते हैं, उनके अपने यहाँ राजतन्त्र चलता है और चुना हुआ प्रधानमंत्री भी राजा के नाम पर सारे काम करता है।

आर्थिक रूप से कम प्रगतिशील एशिया को उपनिवेश बनाने, वहाँ के दुर्लभ प्राकृतिक साधन का दोहन करने और उनको लड़ाई के लिए हथियार बेचने के अलावा एक अन्य दृष्टिकोण भी है। वह है– एशिया में तीन बड़ी शक्तियों का होना और उनकी शक्ति से दुखी देशों की सैटेलाईट जैसी तेज दृष्टि तीनों पर बनी रहना। यहाँ पर "उसकी चादर मेरी चादर से ज्यादा सफ़ेद क्यों?" वाली उक्ति चरितार्थ होती ह। इसलिए एशिया के बड़े देशों को कमजोर करने के लिए भी जानबूझकर युद्ध में बलपूर्वक धकेला जाता है। भारत जैसा देश जो युद्ध कभी नहीं चाहता और उसके पड़ोसी देश जो भारत से युद्ध नहीं चाहते, को कूटनीतिक उपाय से उकसाकर उनपर युद्ध थोपा जाता है। एशिया के तीन बड़े देशों में से एक अबतक युद्ध में धकेला जा चुका है, दूसरा युद्ध जैसी परिस्थिति में पड़ चुका है और तीसरा उसकी ओर बढ़ रहा है।

एशिया को निगल रहा है युद्ध का अजगर– लगातार, हर दिन, हर पल और इसके खतरे से अनजान सब आपस में लड़े जा रहे हैं। इसका लाभ कोई और शक्ति उठा रही है और विकसित से अति विकसित होती जा रही है। इस अजगर से स्वयं को छुडाकर इसको समाप्त करना आवश्यक है। अभी भी लोग संभल जाएँ कि एशिया कोई युद्ध का मैदान नहीं, विकसित होने की क्षमता वाला महाद्वीप है तो यह सचमुच में विकसित बन सकता है।

बाहरी शरारती तत्त्वों से बचने और किसी देश के आंतरिक विषय को बचाकर रखने के लिए आवश्यक है– गूगल, ईमेल, फेसबुक, इन्स्टाग्राम और व्हाटसएप पर निर्भर होने की जगह देसी उपाय विकसित करना। दूसरे देश भागने और अपने देश को नीचा दिखाने से कहीं अच्छा है अपने देश का आर्थिक और सामाजिक विकास करना, दूसरों के बहकावे में न आना और पड़ोसी से सहयोग और व्यापार सम्बन्ध सुधारना।

कम ज्ञात कोनों में झाँकती एक किताब : प्लेसिबो

डॉ. दलीप खेत्रपाल की किताब, 'प्लेसिबोः धर्म, अतीन्द्रिय ज्ञान, दवा और दर्द की दुनिया' का हिन्दी संस्करण प्रकाशित हुआ है। पुस्तक के लेखक अंग्रेजी के अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कवि हैं लेकिन वह चिकित्सीय ज्ञान और मनोविज्ञान का भी गहरा अनुभव रखते हैं। यही कारण है कि उन्होने ऐसे विषय को छुआ है जिसमें इन दोनो क्षेत्रों की जानकारी जरुरी है। इस जानकारी के बिना पुस्तक में उठाये गये विषय से न्याय नही किया जा सकता था। विषय गूढ़ जरूर है लेकिन डॉ. खेत्रपाल ने उसे सरल भाषा शैली में रखा है।

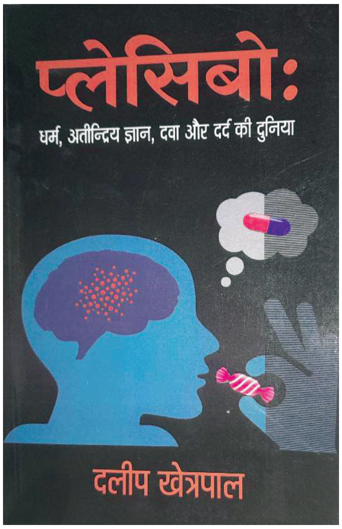

पुस्तक बताती है कि प्लेसिबो विश्वास पर आधारित दर्द और कष्टनिवारक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति है जिसका प्रभाव धर्म, अतीन्द्रीय ज्ञान, दवा और दर्द की दुनिया पर पड़ता है। पुस्तक, दर्द, धार्मिक विश्वास, अतीन्द्रिय ज्ञान, उपचार के बीच गहरे अन्तर्सम्बंधो को दर्शाती है। डॉ. दलीप खेत्रपाल बताते हैं कि दर्द केवल शरीरिक अनुभव नही है बल्कि यह अतीन्द्रिय ज्ञान, सामाजिक और मानसिक रुप से भी जुड़ा है। अतीन्द्रिय ज्ञान या धार्मिक प्रथाएँ दर्द को कम करने के लिए प्रभावी हो सकती हैं क्योंकि विश्वास और आशायें, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालती हैं। उदाहरण के तौर पर विश्वास के कारण शरीर में ऐसी रासायनिक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होती हैं जो दर्द को कम और मन को शांत कर सकती हैं। प्लेसिबो प्रभाव दिखाता है कि विश्वास और आशायें, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को कैसे प्रभावित करती हैं। चाहे वह धार्मिक विश्वास हो या चिकित्सा, ये विश्वास दर्द को कम करने और मृत्यु के डर को घटाने में सहायक हो सकते हैं। कई धार्मिक परंपराएँ, जैसे ईसाई, हिंदू, इस्लाम और बौद्ध धर्म में दर्द को आत्म-प्रेरणा और अध्यात्मिक उन्नति के लिए एक आवश्यक साधन के रूप में देखा जाता है। पौराणिक परंपराएँ मानती हैं कि दर्द आत्मा के शुद्धिकरण और दिव्य से मिलन की दिशा में एक मार्ग हो सकता है। आजकल मानसिक स्वास्थ्य में अतीन्द्रिय ज्ञान की भूमिका को स्वीकार किया जा रहा है। विश्वास और अतीन्द्रिय ज्ञान, मनोवैज्ञानिक उपचार में सहायक हो सकते हैं, लेकिन चिकित्सकों को यह ध्यान रखना होता है कि यह विश्वास कभी-कभी मानसिक रोग भी उत्पन्न कर सकते हैं। प्लेसिबो यानि दवा के स्थान पर दवा का विश्वास आदमी को ठीक कर सकता है इसपर काफ़ी शोध हो चुके हैं और यह साबित किया जा चुका है कि विश्वास के कारण लोग रोगमुक्त हुए हैं। शोध के दौरान एक ही रोग के दो तरह के समूह बनाये गये एक समूह को दवा दी गई जब दूसरे समूह को बिना दवा वाला सादा केप्सूल दिया गया परिणाम यह आया कि जिसे दवारहित केप्सूल दिया गया था वह रोगमुक्त हो गया।

पुस्तक में टेक्नोलॉजी, धर्म और मानवता के आपसी संबंधों से उत्पन्न प्रश्नों को गंभीरता से उठाया गया है। आजकल मानव को अमर बनाने के लिए विज्ञान के द्वारा जो प्रयोग हो रहे है उसे ट्रांसह्यूमेनिज्म नाम दिया गया है। ट्रांस ह्यूमेनिज्म (मानवता को तकनीकी उन्नति के द्वारा सीमाओं से मुक्त करना) और धर्म के दृष्टिकोण में अंतर है। ट्रांसह्यूमेनिज्म में मानव जीवन के प्राकृतिक और अतीन्द्रिय ज्ञान सिद्धांतों से परे जाकर अमरता और शक्ति प्राप्त करने की कोशिश की जाती है जबकि धर्म आत्मिक उन्नति और दिव्यता से मिलन की दिशा में कार्य करता है। यह विचार किया जाता है कि दर्द और विश्वास का आपस में गहरा संबंध है। विश्वास किसी भी रुप में (चिकित्सा, धार्मिक या अतीन्द्रिय ज्ञान) शारीरिक और मानसिक उपचार के लिए अत्यधिक प्रभावी हो सकता है। आत्मिक विश्वास और प्रथाएँ मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं और ये हमारी जिन्दगी को रुपांतरित कर सकती हैं।

पुस्तक का यही संदेश है कि दर्द, विश्वास और उपचार के बीच जो आपसी संबंध है यह एक शक्तिशाली कारक हो सकता है जो न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है। भविष्य में तकनीकी उन्नति और अतीन्द्रिय ज्ञान के संतुलन से मानवता का विकास हो सकता है और प्राकृतिक और अतीन्द्रिय ज्ञान सिद्धांतों के साथ जुड़कर हम अपनी वास्तविक स्वतंत्रता और आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। पुस्तक धार्मिक प्रथाओं, पौराणिक परम्पराओं के अंधविश्वासी पक्ष के प्रति जागरुक करने के साथ साथ उनके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण भी अपनाने पर जोर देती है। ऐसी प्रथाओं, परम्पराओं का कोई सकारात्मक पक्ष भी हो सकता है पुस्तक इसपर रौशनी डालती है। निश्चय ही हिन्दी भाषी पाठकों की जानकारी में यह पुस्तक, कुछ नया जोड़ेगी।

समीक्षा और अनुवाद– मुशर्रफ अली

(किताब अमेज़न पर उपलब्ध है।)

ग़ज़ल-दस्ता

अशोक सिंह

समिति के पुराने और सक्रिय सदस्य अशोक सिंह के तीन ग़ज़ल-संकलन 'वाणी प्रकाशन' से प्रकाशित हुए हैं।

- आरज़ू की शाख़ पर – प्रतिनिधि ग़ज़लें: इस संकलन में कुल 126 पृष्ठ हैं, और चुनी हुई 112 ग़ज़लें शामिल हैं।

- खिल गया गुंचा कोई : इस संकलन में कुल 122 पृष्ठ हैं, और चुनी हुई 110 ग़ज़लें शामिल हैं।

- सूरज कि चाँद, कहकशाँ: इस संकलन में कुल 122 पृष्ठ हैं, और चुनी हुई 108 ग़ज़लें शामिल हैं।

ये तीनों किताबें 'ग़ज़लदस्ता' के नाम से एक ख़ूबसूरत आवरण में सँजोई गई है। बधाई।

कुल मिला कर तीनों पुस्तकों में कुल 370 पृष्ठ, और 330 ग़ज़लें आपको मिलेंगी। मूल्य 885/- रु.

ये ग़ज़लें किसी विषय विशेष से बँधी हुई नहीं है, लेकिन कल्पना और यथार्थ के तमाम सारे पहलुओं पर दृष्टि डालती नज़र आएँगी।

यहाँ हम अपने पाठकों के लिए उनकी कुछ ग़ज़लें प्रस्तुत कर रहे हैं। **–सं.**

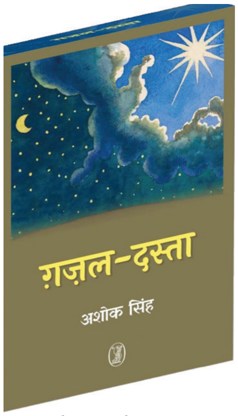

तू लफ़्ज़ लफ़्ज़ बन मेरे शेर-ओ-सुख़न में आ

तू लफ़्ज़ लफ़्ज़ बन मेरे शेर-ओ-सुख़न में आ,
माह-ए-दरख़्शाँ बन के ग़ज़ल फ़िक्र-ओ-फ़न में आ।
* माह-ए-दरख़्शाँ= रौशन चाँद

बदली से छन के आती हो जैसे किरन में धूप,
तू ख़्वाब-ए-पैरहन सी सजी मेरे मन में आ।

बादे-सबा शमीम हो कूचा-ए-यार की,
निकहत-ए-ज़ुल्फ़ घोल यूँ मद्धम पवन में आ।
* शमीम = महक

कुछ हुस्न-ओ-इश्क़ की भी कशिश रूबरू जो हो,
हुस्न-ए-नज़र ऐ दिलरुबा मेरे चमन में आ।

तन्हाई तेरी भी तुझे कर देगी ज़ार ज़ार,
वीरानी ले के अपनी मेरे सूने पन में आ।

हर इक जुनूँ को हद से गुज़रने का दाँव दे,
जान-ओ-जिगर में आ कभी दार-ओ-रसन में आ।

टूटे हुए ये हौसले हैं, मरहले भी है,
छूने को रूह मेरे बदन की थकन में आ।

बातें वफ़ा की करता है तो ग़ैर सा लगे,
पैमाँ-शिकन हो यार ज़रा बाँकपन में आ।
* पैमाँ - शिकन - वादा तोड़ने वाला

या दर्द के मिक़दार को थोडा सा घटा दे

या दर्द के मिक़दार को थोडा सा घटा दे,
या ताब सहन करने की कुछ और बढ़ा दे।

इंसानियत अब भी है अगर दुनिया में जज़्बा,
इंसान को इक बार फ़िर इंसान बना दे।

इक रम्ज़ ही काफ़ी है बदलने को नज़ारा,
तू ही तो मुसव्विर है, जहाँ फिर से सजा दे।

दे ही दिया है तूने मुहब्बत का सिला गर,
मिटने दे अभी बाद मे जो चाहे सज़ा दे।

जगती हुई रातों के सजें ख़्वाब पलक पर,
पल भर ही सही, पर तू ज़रा सा तो सुला दे।

तू हो कि तेरा ग़म रहे कुछ तो मेरी क़िस्मत,
या अपना बना ले या कि दीवाना बना दे।

क़िस्मत से मुहब्बत की मिले बाज़ी जहाँ में,
जो पास है वो दाँव पे सब कुछ ही लगा दे।

फ़लक से आख़िरी तारा चला है

फ़लक से आख़िरी तारा चला है,
ये नींद आँखों से अब भी लापता है।

बदल लेगा वो आदत कुछ दिनों में,
नया है शौक़, दिलकश रास्ता है।

सलोनी अँखियों की नैरंगियाँ थीं,
मोहब्बत में हुआ दिल मुब्तला है।
*नैरंगियाँ = जादूगरी; मुब्तला = आसक्त, संकट में

हरा था पर गिरा छूते ही ऊपर,
पता क्या था तने से खोखला है।

ज़माने को मैं कब का जीत लेता,
मगर अफ़सोस दिलबर बेवफ़ा है।

चले आते उठाकर मुँह कभी भी,
कि जैसे घर ये उनके बाप का है।

ये हंगामा मचा रखा है उसने,
अभी तो इश्क़ की ये इब्तिदा है।

मसर्रत का ख़ुशी ग़म से क्या लेना,
ये दिल का आरज़ी इक मरहला है।
* मसर्रत=ख़ुशी; आरज़ी=अस्थायी

अगर खुल कर के कहने का ज़रा भी हौसला होता

अगर खुल कर के कहने का ज़रा भी हौसला होता,
तो क़िस्सा ग़ालिबन अपना भी शायद दूसरा होता।

नए सज साज में जैसे पुरानी आई हो दुल्हन,
पुरानी बात को शायर कभी यूँ कह रहा होता।

हवस इंसान में जीने की बेशक़ है इसी ख़ातिर,
अगर मरना नहीं होता, तो क्या जीना हुआ होता।

वादे अगर नाकाम हरदम ही मोहब्बत में,
तो इंसां कोशिशों में अब तलक फिर क्यों लगा होता।

सभी दरवाज़े, रस्ते बंद जब लगने लगे थे तो,
चिराग़ उम्मीद का ही कम से कम जलने दिया होता।

हमारी ही हुकूमत उनके दिल पर जो चली होती,
मैं भी आशिक़, कभी दिलबर, कभी जानम रहा होता।

अगर जाना था उसकी बज़्म में इतना तो कर लेता,
अदब के तौर से ही कम से कम वाक़िफ़ हुआ होता।

जुनूँ इंसान में दौलत का या होता मोहब्बत का,
किसी उम्मीद पे ही मामला सारा टिका होता।

जो जीने के सभी रस्ते उसी मंज़िल पे ले जाते,
अमन का सिलसिला दुनिया में अब तक हो गया होता।

एक चर्चित किताब की चर्चा

हे प्रभु! तुम एक बार स्त्री बनना

डॉ. रंजना अरगडे

मो. 9426700943, argader@gmail.com

... फिर एक महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार की घोषणा, फिर एक वर्ग की ओर से उठता विवाद, एक वर्ग की चुप्पी, एक वर्ग का उत्साह और एक वर्ग की उदासीनता, बल्कि अनुपस्थिति। इसी में यह साल बीत जाएगा और अगला पुरस्कार घोषित होने का समय आ जाएगा। पिछले लंबे समय से हमारे सारस्वत समाज का लगभग यही बौद्धिक चरित्र उभरता जा रहा है। इस पर विस्तृत टिप्पणी बेमानी है।

इस बार जब अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार की घोषणा हुई तो पिछला, हमारे देश को मिला, बुकर याद आ गया जो 2022 में गीतांजली श्री को 'रेत समाधि' पर मिला था। 2016 में छपे; 'रेत समाधि' पर बुकर मिलने से पहले, इस किताब पर कितनों का ध्यान गया? बुकर मिलने के बाद भी बहुत सारे यह कहते पाए गए कि हम तो पूरा नहीं पढ़ पाए। ईमानदारी की बात यह है कि बुकर मिलने से पहले मैंने भी इसे नहीं पढ़ा था। बहरहाल। पुरस्कार की घोषणा के साथ ही बानू मुश्ताक़ का नाम पहली बार सुना और मालूम हुआ कि वे एक भारतीय कन्नड लेखिका हैं । शायद उनका हिंदी में अनुवाद नहीं हुआ होगा अतः जानकारी नहीं थी।

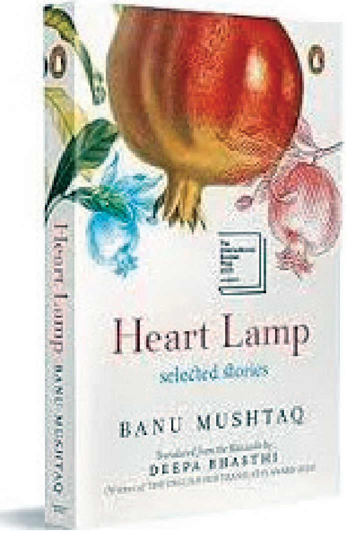

'हार्ट लैंप' की बात करने से पहले दोनों किताबों के अनुवादों पर एक संक्षिप्त सी बात कहने का मन है।

डेज़ी रॉकवैल का अनुवाद पढ़ कर ' रेत समाधि' बेहतर संप्रेषित होता है। यह जो मैंने कहा कि लगभग दो बार अनुवाद पढ़ा– वह इसलिए कि उस उपन्यास के जटिल और मेरी दृष्टि से अनुवाद में दुरूह ऐसे स्थानों को मैंने मूल से मिला कर देखा और मैं उस अनुवाद पर सम्मोहित हो गई। जबकि 'हार्ट लैंप' का अनुवाद पढ़ कर मुझे लगा कि अगर इसका हिंदी अनुवाद पढ़ पाती तो संप्रेषण अधिक सशक्त हो सकेगा।

'हार्ट लैंप' में संकलित कुल 12 कहानियों का रचना काल पुस्तक में स्पष्ट नहीं है। हाँ, कुछ अधिक शोध करने पर पता चल सकता है। कहानियों का क्रम और चुनाव तो अनुवादक ने ही किया होगा। इसमें शक़ नहीं कि क्रम बहुत अच्छा रखा है। अगर हमें यह लगे कि इसमें हमारे समय की आवाज़ नहीं है तो पहला सवाल यह है कि हमारा समय कहाँ से कहाँ तक का है? और क्या हमारे समाज में रहने वाले हर तबक़े का समय एक जैसा है? एक सवाल यह भी वाजिब है कि आज सुनाई देने वाले घने शोर के नक्कारखाने में हमारे समय की कोई आवाज़ सुनाई भी पड़ती है? अगर है तो उसका एक स्वर अभी भी वह है जो 'हार्ट लैंप' की कहानियों में हमें सुनाई पड़ता है। एक ऐसे समय में जब दुनिया में सत्ताएँ मानव समाज को अनेक रूपों में स्पष्ट रूप से विभाजित करने के लिए हर तरह का प्रयास कर रही हैं, तब इस पुस्तक को यह पुरस्कार मिलने के कई कारण हो सकते हैं और कई अर्थ निकाले जा सकते हैं। एक सवाल मेरे मन में यह भी उठता है कि क्या इस पुरस्कार प्राप्त करने वाले लेखक को अपने समय की आवाज़ ही सुनाना ज़रूरी है? क्या यह पुरस्कार की शर्त है? क्या अगर यह किसी एक समय की आवाज़ हो तो क्या इस पुस्तक की पात्रता समाप्त हो जाएगी? अथवा सार्वकालिक आवाज़ का भी महत्व है?

हालांकि अंग्रेज़ी अनुवाद में पढ़ना, इन कहानियों के वास्तविक मर्म से वंचित हो जाने जैसा ही लगा।

पर कन्नडेतर, विशेषकर कुछेक हिंदी लेखिकाओं ने यह प्रश्न किया है कि ये इतनी सामान्य सी कहानियाँ, जो आज के मुस्लिम समाज का प्रतिनिधित्व भी नहीं करतीं, उसे यह पुरस्कार कैसे मिल गया। पर खैर, अब तो मिल गया है पुरस्कार और अब यह पुस्तक बारह भारतीय भाषाओं में तथा बाईस विदेशी भाषाओं में अनूदित हो जाएगी (जैसा कि बी.बी.सी. में दिए इंटरव्यू में लेखिका ने बताया)। 'हार्ट लैंप' (हृदय दीप अथवा दिल का दिया) की कुल बारह कहानियों में लेखिका ने मुस्लिम परिवारों में पति-पत्नी के संबंध, उस समाज की धार्मिक कट्टरताएँ, उनमें फँसी स्त्रियाँ, मौलवियों और मुतवल्लियों की समाज पर जकड़ और पकड़ आदि से जुड़ी हैं।

लेकिन इस संग्रह में और भी कई कहानियाँ हैं जो लेखिका के हास्य बोध को, व्यर्थ की चीज़ों के मोह में फँसे मनुष्य की परिणति से उपजी मानवीय करुणा और विडंबना (ऊँची एड़ी के जूते तथा अरबी शिक्षक तथा गोबी मंचूरी) को उजागर करती हैं। एक छोटा निजी स्वार्थ या निराशा किस तरह अपनी कठोरता के कारण व्यापक अहित कर सकते हैं (दिल का दिया) बानो मुश्ताक़ अपनी कहानियों में कई बार लोकप्रिय मान्यताओं का समर्थन करती दिखती हैं। परन्तु इन कहानियों में धन- सत्ता से प्राप्त अधिकारों के अन्तर्गत की गई चालाकियां भी उजागर हुई हैं। हक़दार तरसे तो अंगार का नूह बरसे को सच करती 'अग्नि वर्षा' कहानी में हास्य और विडंबना के माध्यम से बहुत प्रभावशाली तरीके से मुतवल्ली की नीयत को उजागर किया गया है। 'स्वर्ग का स्वाद' कहानी मे डिमेंशिया में चली जाने वाली

बुआ का अत्यन्त मार्मिक चित्रण है। इसमें बच्चों के माध्यम से बात कही जाती है अतः इसकी सघनता और घोर गंभीरता सह्य हो जाती है। यही बानो मुश्ताक़ का लेखकीय कौशल है जो उनकी कहानियों को संतुलित करता रहता है। यह वह कहानी कला है जिसमें बानो मुश्ताक़ माहिर हैं। वहीं 'लाल लुंगी' कहानी में खतना की पूरी प्रक्रिया को बताया है। यह अन्य समाज वालों के लिए नई जानकारी है। इसमें हालांकि डॉक्टर के द्वारा किए गए खतने से उपजी तकलीफों के बरक्स धार्मिक विधि से किए गए खतने को अधिक सफल बताया गया है, ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु इसमें एक छिपा व्यंग्य इस बात का है कि सामूहिक खतने में अमीर उदारता का नाटक करते हुए अपने लिए अधिक सुविधा लेता है और गरीब को भगवान भरोसे छोड़ देता है। वह वर्ग प्रशंसा भी चाहता है कि कैसे गरीब परिवारों को अवसर दिया और उनके प्रति भेदभाव भी रखता है। धनिकों के अहंकार और मनमानी के नीचे दबी गरीब की आकांक्षा का तार तार होना कफ़न (Shroud) कहानी में बड़ी मार्मिकता से उजागर हुआ है। इनकी कहानियों के ये स्वर स्वाभाविक भी हैं क्योंकि बानो मुश्ताक़ पहले एक एक्टिविस्ट हैं, वकील और पत्रकार भी हैं और कन्नड साहित्य के चर्चित बंडाया आंदोलन की उपज भी हैं।

संग्रह की पहली और अंतिम कहानी में जो पुरुष (पति) हैं वे अपनी पत्नियों के बीमार होने अथवा मर जाने के बाद अलग बहानों से दूसरा विवाह करते हैं। अपनी पत्नी शाइस्ता से बेइंतिहा प्रेम करते दिखते इफ्तख़ार खान, जो उसके लिए ताजमहल की टक्कर का महल बनाने की बात करता है, वह उसकी मृत्यु के चालीसवें के बाद तुरंत ही दूसरी शादी करता है। बीवी कहलाई जाने वाली नामहीन पत्नी के पेट में गांठ निकल आने के बाद उसे बड़ी क्रूरता से दरकिनार कर दूसरी शादी करने वाले पति की कहानी बहुत ज्यादा करुण है।

इस किताब का जन्म इस भरोसे से हुआ है कि कोई भी कहानी कभी छोटी नहीं होती। मानवीय अनुभव के ताने-बाने में हर धागा मायने रखता है। ऐसी दुनिया में जो अक्सर हमें बांटने करने की कोशिश करती है, साहित्य उन खोई हुई पवित्र जगहों में से एक है, जहां हम एक-दूसरे के दिमाग में रह सकते हैं, भले ही कुछ पन्नों के लिए ही क्यों न हो।

–अवॉर्ड जीतने के बाद बानू मुश्ताक

हालांकि आज मुस्लिम समाज पति पत्नी के संबंध और तलाक़ व स्त्री अधिकारों के विषय में बहुत आगे निकल गया है, अधिक प्रगतिगामी हो गया है, परन्तु ये दोनों कहानियाँ अपने शिल्प की भिन्नता के कारण पाठक के हृदय को छू लेती हैं। एक समय का तो यह सत्य था-चाहे आज का न हो। शाइस्ता महल के पत्थर पटिए (Stone Slabs for Shaista Mahal) में कथा-कथक कोई और है। अतः एक दूरी से कथा की विडंबना प्रस्तुत होती है और अपना प्रभाव छोड़ती है। अंतिम कहानी की नामहीन नायिका ख़ुदा को पत्र के द्वारा अपनी दुर्दशा का बयान करती है। यह बयान बड़ा वस्तुगत तरीके से किया गया है। अंत में वह कहती है कि 'अब मैं कोई ख़त नहीं लिखूंगी। धैर्य का अर्थ मैं नहीं जानती हूँ। हे ईश्वर अगर तुम्हें दुबारा यह दुनिया बनानी हो, दुबारा स्त्री और पुरुष बनाने हों तो एक अनुभवहीन कुम्हार की तरह मत पेश आना। धरती पर आओ, एक स्त्री के रूप में। हे ईश्वर! एक बार औरत ज़रूर बनना।' अगले जन्म मोहे बिटिया न कीजो (कर्तुल ऐन हैदर) के बरक्स ईश्वर को स्त्री बनने की चुनौती देती यह कहानी कुछ अलग तो है ही। शिल्प के स्तर पर नए ढंग से सोचा है।

"तुम अब्बा की वजह से मरने को तैयार हो पर क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम हमारे लिए जिओ?" यह वह चीर देने वाला सवाल है जो मेहरून की 16 वर्षीय बेटी सलमा उससे पूछती है, जब वह आत्महत्या के लिए पूरे शरीर पर केरोसिन डाल चुकी है। पति की बेवफाई और मायके वालों की बेरुखी तथा अपने अपमान से आहत हो कर मेहरून को लगा कि इस दुनिया में जीने के लिए कोई कारण नहीं बचा है। जो कभी अपने पति के हृदय को आलोकित करने वाला दीया थी, वह स्वयं आज अपने आप को निविड़ अंधकार में पाती है। कहानी का कथ्य नया नहीं है पर अपनी जवान होती बेटी का यह प्रश्न और आत्महत्या करने का इरादा छोड़ती मेहरून का निर्णय नया है। लेखिका ने इसे बहुत नज़ाक़त के साथ बरता है।

इन कहानियों का रचाव और उसमें आते रामायण महाभारत के उदाहरण इन्हें रोचक तो बनाते ही हैं, पर हमें चौंकाते भी हैं। बानो मुश्ताक़ की ये कहानियाँ केवल मुस्लिम समाज की नहीं बल्कि मानवीय भावनाओं को उजागर करती हैं। ये कहानियां अपने में जिन सूक्ष्म संदर्भों और कहीं-कहीं भाषा के खिलंदडे रूप को प्रकट करती हैं, उससे लेखिका की सर्जनात्मक ताक़त का पता चलता है। •

बधाई

कन्नड़ की 77 वर्षीय लेखिका **बानू मुश्ताक** (बाएं) को उनके लघुकथा संकलन 'हार्ट लैंप' (हृदय दीप) के लिए उनकी अंग्रेजी अनुवादक दीपा भस्ती (दायें) के साथ संयुक्त रूप से साहित्य के अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। बधाई!

विशेष आलेख

डाक टिकटों के आईने में वैश्विक राम

कृष्ण कुमार यादव

पोस्टमास्टर जनरल, उत्तर गुजरात परिक्षेत्र, अहमदाबाद -380004 मो. 9413666599 ई-मेलः kkyadav.t@gmail.com

भगवान श्री राम हमारे आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति करते हैं। मानव इतिहास में राम-कथा की जितनी व्याप्ति है, शायद ही उसका कोई अन्यत्र उदाहरण मिलता हो। श्री राम देश के जनमानस में बहुत गहरे व्याप्त हैं। श्री राम मानवीय आचरण, जीवन मूल्यों और आत्मबल के ऐसे मानदण्ड बन गए कि उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में स्वीकार किया गया। उनका धार्मिक ही नहीं सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्व भी है। तभी तो राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने सार्वजनिक जीवन में राम के नाम का उपयोग करते हुए 'राम राज्य' का आदर्श सामने रखा। यह अनायास ही नहीं है कि आज भी भारतीय जनमानस अपने नेतृत्वकर्ताओं से लेकर नायकों में ऐसे चरित्र को ढूँढ़ता है, जो भगवान श्री राम की तरह लोक कल्याण के प्रति समर्पित हों।

डाक टिकट किसी भी राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति एवं विरासत के संवाहक हैं। डाक टिकट अतीत को वर्तमान से जोड़ते हैं। देश-विदेश के समृद्ध व गौरवशाली इतिहास और विरासत से परिचय कराने में डाक टिकटों का अहम स्थान है। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय महत्व के विषयों, विभूतियों के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक पहलुओं पर भी डाक टिकट जारी होते रहते हैं। रामायण महाकाव्य केवल भारत में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में प्रसिद्ध है, ऐसे में मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्री राम से लेकर रामायण के विभिन्न दृष्टांतों पर भारत सहित दुनिया के कई देशों ने डाक टिकट जारी किये हैं।

भारतीय गणतंत्र के शुभारंभ पर 26 जनवरी, 1950 को भारतीय डाक विभाग ने साढ़े तीन आना का एक स्मारक डाक टिकट जारी किया, जिसमें भारत की सांस्कृतिक समृद्धता को दर्शाने के लिए रामायण के छंदों 'रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीताराम' का इस्तेमाल किया गया। 1 अक्टूबर, 1952 को 'भारतीय संत एवं कवि' थीम पर 6 स्मारक डाक टिकट जारी किये गए। इनमें गोस्वामी तुलसीदास, संत कबीर, मीरा, सूरदास, गालिब एवं रविन्द्र नाथ टैगोर शामिल थे। श्री राम को जन-जन तक पहुँचाने वाले रामचरित मानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास पर 1 आना की डाक टिकट जारी की गई। उनकी अवधी में लिखी रामचरित मानस आज भी सर्वाधिक लोकप्रिय है। रामायण सिर्फ उत्तर भारत ही नहीं, दक्षिण भारत में भी उतनी ही लोकप्रिय है। महर्षि कंबन तमिल भाषा के प्रसिद्ध ग्रंथ 'कंबरामायण' के रचयिता थे। 5 अप्रैल 1966 को इसके रचयिता महर्षि कम्बन पर 15 नये पैसे का डाक टिकट जारी किया।

श्रीराम की कथा के सूत्र वैदिक, बौद्ध जातक कथा, प्राकृत के जैन ग्रन्थ 'पउमचरिय' में भी मिलते हैं। महाभारत के वन पर्व में भी 'रामोपाख्यान' आता है, किन्तु आदिकवि वाल्मीकि कृत 'रामायण' में ही यह कथा ललित और सुव्यवस्थित रूप में विकसित हुई। संस्कृत के प्रथम महाकाव्य रामायण की रचना महर्षि वाल्मीकि ने की। महर्षि वाल्मीकि पर 14 अक्टूबर, 1970 को 20 नये पैसे का डाक टिकट जारी किया। गोस्वामी तुलसीदास द्वारा अवधी भाषा में 16वीं शताब्दी में रचित महाकाव्य रामचरित मानस हिन्दू धर्म का एक प्रमुख धार्मिक ग्रंथ है, जिसमें श्रीराम को मर्यादा पुरूषोत्तम के रूप में दिखाया गया है। वैसे भी जो चीज सहज-सरल भाषा में कही जाए, उसका प्रभाव अलग पड़ता है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस का अनुपम शैली में दोहों, चौपाइयों, सोरठों तथा छंदों का आश्रय लेकर बहुत अच्छा वर्णन किया है। रामचरित मानस पर भी 24 मई, 1975 को 25 पैसे का डाक टिकट जारी किया।

हमारे देश में श्री राम अच्छाई के प्रतीक हैं और रावण बुराई का। तमाम ग्रंथों में रावण को महिमा-मंडित भी किया गया है। ग्रंथों में यह भी उल्लेखित है कि रावण प्रकांड पंडित और परम शिव भक्त भी था। बुराई को रावण की संज्ञा दी जाती है। विजयदशमी पर्व बुराई पर अच्छाई की जीत प्रतीक है। यह दर्शाता है कि बुराई के भले कितने भी सिर क्यों न हो, अच्छाई के आगे सब झुक भी जाते हैं और कट भी जाते हैं। रावण के दस सिर वाले मुखौटे पर भी 15 अप्रैल, 1974 को 2 रुपये का डाक टिकट जारी किया।

वनवास पश्चात् जब श्री राम सीता और लक्ष्मण के साथ अयोध्या से निकले तो प्रयागराज में निषादराज ने उन्हें अपनी नाव से गंगा पार कराया। ऐसे में गंगा नदी का उल्लेख भी रामायण में मिलता है। इस पर भी एक डाक टिकट 'गंगा : जीवनदायिनी नदी' (28 दिसंबर, 1990, मूल्य 6 रुपये) जारी किया। वर्ष 1991 में 'कमलादेवी चट्टोपाध्याय-कठपुतली' शीर्षक से जारी साढ़े छः रुपये के डाक टिकट में भी रामायण के चरित्र को कठपुतली रूप में दर्शाया गया। 'मधुबनी-मिथिला चित्रकला' पर 15 अक्टूबर, 2000 को जारी 3 रुपये के डाक टिकट में बाली और सुग्रीव के युद्ध को दर्शाया गया है।

रामेश्वरम की यात्रा करनेवालों को हर जगह राम-कहानी की गूंज सुनाई देती है। रामेश्वरम के विख्यात मंदिर की स्थापना के बारे में मान्यता है कि श्री राम ने, युद्ध कार्य में सफलता और विजय के पश्चात कृतज्ञता हेतु अपने आराध्य भगवान शिव की आराधना के लिए समुद्र किनारे की रेत से शिवलिंग का अपने हाथों से निर्माण किया, तभी भगवान शिव स्वयं ज्योति स्वरूप प्रकट हुए और उन्होंने इस लिंग को श्री रामेश्वरम की उपमा दी। रामेश्वरम शहर के दक्षिणी कोने में धनुषकोडी नामक तीर्थ है, जहाँ हिंद महासागर से बंगाल की खाड़ी मिलती है। इसी स्थान को सेतुबंध कहते है। लोगों का विश्वास है कि श्रीराम ने लंका पर चढाई करने के लिए समुद्र पर जो सेतु बांधा

था, वह इसी स्थान से आरंभ हुआ। रामेश्वरम शहर से करीब डेढ़ मील उत्तर-पूर्व में गंधमादन पर्वत नाम की एक छोटी-सी पहाड़ी है। मान्यता है कि हनुमानजी ने इसी पर्वत से समुद्र को लांघने के लिए छलांग मारी थी। बाद में श्री राम ने लंका पर चढ़ाई करने के लिए यहीं पर विशाल सेना संगठित की थी। डाक विभाग ने 'रामेश्वरम' (22 दिसंबर, 2001, मूल्य 15 रुपये) पर भी डाक टिकट जारी किया।

रामायण की कहानियाँ पुस्तकालयों के माध्यम से नई पीढ़ी में प्रसारित होती रहती हैं। 'रामपुर रज़ा लाइब्रेरी' पर 19 जून, 2009 को जारी 5 रुपये के डाक टिकट में श्री राम और लक्ष्मण को जटायु के साथ दर्शाया गया है। 'जयदेव और गीत गोविन्द' सीरीज पर 22 जुलाई, 2009 को जारी 5 रुपये के डाक टिकट में श्री राम द्वारा रावण वध और एक अन्य डाक टिकट में परशुराम जी को दिखाया गया है। तेलुगु भाषा में रामायण की रचयिता महिला कवयित्री अतुकुरी मोला पर 26 अप्रैल, 2017 को 5 रुपये का डाक टिकट जारी हुआ। आसियान भारत मैत्री रजत जयंती शिखर सम्मेलन, 2018 पर 25 जनवरी, 2018 को जारी 11 डाक टिकटों की मिनिएचर शीट में भी रामायण से संबंधित विभिन्न चरित्रों और दृश्य को अंकित किया गया है।

'घुमंतू नायकों के वाद्य यंत्र' के तहत 25 जून, 2020 को 'रावण हत्था' पर 5 रुपये का डाक टिकट जारी हुआ। रावण हत्था मूलत: पश्चिम राजस्थान में बजाया जाता है। रामदेव जी व पाबूजी की फड़ वादन में इस वाद्य यंत्र का उपयोग किया जाता हैं। पौराणिक कथाओं के अनुसार रावण ने इसका आविष्कार किया था और रावण हत्था का उपयोग करके भगवान शिव की सेवा की। ऐसा माना जाता है कि, राम और रावण के बीच युद्ध के बाद, हनुमान एक रावण हत्था उठाकर उत्तर भारत लौट आये। लक्ष्मण मंदिर, सिरपुर (8 अगस्त, 2020, मूल्य 5 रुपये) पर भी डाक टिकट जारी हुआ। परशुराम जी पर 19 मार्च, 2023 को एक डाक टिकट जारी किया।

दशहरा और दीपावली का पर्व प्रभु श्री राम से सम्बद्ध माना जाता है। दशहरा जहाँ रावण पर उनकी विजय का उद्घोष है, वहीं वनवास पश्चात् अयोध्या आगमन पर नगरवासियों द्वारा दीप जलाकर उनका भव्य स्वागत किया गया, जिसे दीपावली रूप में मनाया जाता है। 'भारत के त्योहार' थीम पर 7 अक्टूबर, 2008 को जारी डाक टिकटों में 'दशहरा, कोलकाता', 'दशहरा, मैसूर' और 'शुभ दिपावली' सभी पर 5 रुपये मूल्य वर्ग के डाक टिकट जारी हुए। साथ में जारी प्रथम दिवस आवरण पर दस सिर वाले रावण को भी अंकित किया गया है। भारत-इजरायल संयुक्त डाक टिकट के तहत 5 नवंबर, 2012 को 'प्रकाश पर्व- दीपावली' पर 5 रुपये का डाक टिकट जारी हुआ। भारत-कनाडा संयुक्त डाक टिकट के तहत 21 सितंबर, 2017 को 'दिवाली' पर 5 और 25 रुपये का डाक टिकट जारी हुआ।

रामायण के सभी महत्वपूर्ण प्रसंगों को दर्शाते 11 स्मारक डाक टिकटों का सेट 22 सितंबर, 2017 को जारी किया गया । इन डाक टिकटों में सीता स्वयंवर, राम वनवास, भरत मिलाप, केवट प्रसंग, जटायु संवाद, शबरी संवाद, अशोक वाटिका में हनुमान-सीता संवाद, राम सेतु निर्माण, संजीवनी ले जाते हनुमान, रावण वध व भगवान राम के राजगद्दी पर बैठने के आकर्षक दृश्य समाहित हैं। राम-सीता स्वयंवर से लेकर भगवान राम के अयोध्या में राज्याभिषेक तक के प्रसंगों को इन डाक टिकटों पर देखकर ऐसा एहसास होता है मानो पूरा राम राज्य ही डाक टिकटों पर उतर आया हो।

श्रीराम जन्मभूमि मंदिर, अयोध्या के भूमि पूजन एवं शिलान्यास कार्यक्रम को अविस्मरणीय बनाने के लिए 5 अगस्त, 2020 को अयोध्या में 'श्री राम जन्मभूमि मंदिर के प्रतिरूप पर आधारित डाक टिकट (माई स्टैम्प) जारी किया। इसके साथ ही 'रामायण विश्व महाकोश' पर एक विशेष डाक आवरण व विरूपण भी जारी किया। 'ग्लोबल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ द रामायण' पर जारी किए गए विशेष आवरण में विभिन्न काल खंडों एवं विभिन्न देशों में मिलने वाले रामायण संस्कृति के प्रमाणिक साक्ष्यों की जानकारी दी गयी है। इससे पूर्व 26 अक्टूबर 2019 को दीपोत्सव, अयोध्या एवं वर्ष 2019 में ही 'शुभ विवाह' थीम पर माई स्टैम्प जारी किया गया, जिसमें राम-सीता जी का विवाह दर्शाया गया है।

अयोध्या में रामलला की प्राण प्रतिष्ठा से पहले 18 जनवरी, 2024 को श्रीराम जन्मभूमि मंदिर को समर्पित 6 विशेष स्मारक डाक टिकट जारी किए। इनमें श्री राम जन्मभूमि मंदिर के साथ भगवान गणेश, भगवान हनुमान, जटायु, केवटराज और माता शबरी पर जारी डाक टिकट शामिल हैं। इन डाक टिकटों में राम मंदिर का भव्य चित्र है, कलात्मक अभिव्यक्ति के जरिए रामभक्ति की भावना है, और 'मंगल भवन अमंगल हारी, द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी', इस लोकप्रिय चौपाई के माध्यम से राष्ट्र के मंगल की कामना है। इनमें सूर्यवंशी राम के प्रतीक सूर्य की छवि है, जो देश में नए प्रकाश का संदेश भी देता है। इनमें पवित्र नदी सरयू का चित्र भी है, जो श्रीराम के आशीर्वाद से देश को सदैव गतिमान रहने का संकेत करती है। मंदिर के आंतरिक वास्तु के सौंदर्य को बड़ी बारीकी से इन डाक टिकटों पर प्रिंट किया गया है। एक प्रकार से पंच तत्वों का हमारा जो दर्शन है इसका एक मिनिएचर रूप प्रभु राम के माध्यम से दर्शाया गया है। सोने के वर्क से सुसज्जित और चंदन की खुशबू से सुवासित इन डाक टिकटों के मुद्रण में अयोध्या की पवित्र मिट्टी और सरयू के पवित्र जल का इस्तेमाल करते हुए इसे पंच महाभूतों के दर्शन से भी जोड़ा गया है।

श्री राम का चरित्र सिर्फ भारत ही नहीं, बल्कि कई देशों की सभ्यताओं और संस्कृतियों को प्रभावित करता है। बंगाल से बाली तक और तमिलनाडु से तिब्बत तक सबके अपने राम हैं और अपनी रामायण। कहते हैं कि दुनिया भर में अपने अलग-अलग पाठों के साथ लगभग 300 रामायण मौजूद हैं। भारत के विभिन्न अंचलों की बात करें तो 100 से ज्यादा तरह की रामायण यहाँ प्रचलित हैं। हैरतअंगेज तरीके से इन रामायणों में पात्र, कथानक और घटनाएं न सिर्फ बदल जाती हैं बल्कि अपना देशज स्वरूप और आंचलिकता भी दिखाती हैं। साहित्य और रंगमंच की दृष्टि से राम कथा विश्व के अधिकांश देशों में पहुँच स्थापित करती है। राम-कथा के सूत्र भारत के बाहर श्रीलंका, नेपाल, इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, लाओस, जापान, चीन, वियतनाम, सूरीनाम, कंबोडिया और म्यांमार इत्यादि देशों तक

(शेष पृ. 20 पर)

अमेरिकी धरती पर हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति का भव्य उत्सव

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति का 22वाँ द्विवार्षिक अधिवेशन, क्लीवलैंड (ओहायो)

(2-3 मई 2025)

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति (अ.हि.स.) का 22वाँ द्विवार्षिक अधिवेशन 2–3 मई, 2025 को ओहायो के रिचफील्ड शहर में उत्तर-पूर्व ओहायो शाखा द्वारा आयोजित किया गया। यह अधिवेशन हिंदी भाषा की विरासत और उज्ज्वल भविष्य का सुन्दर ताना बाना था। इस आयोजन को कई स्थानीय मेयरों का सहयोग-समर्थन प्राप्त हुआ, जिन्होंने विशेष घोषणाओं के माध्यम से आयोजन को सम्मानित किया। रिचफील्ड और एक्रन के मेयरों द्वारा "अंतर्राष्ट्रीय हिंदी जागरूकता माह" की घोषणा तथा मेडिना, ब्रॉडव्यू हाइट और इंडिपेंडेंस शहरों के मेयरों द्वारा "अंतर्राष्ट्रीय हिंदी जागरूकता सप्ताह" की घोषणा की गई। सम्मेलन में अ.हि.स के ट्रस्टी अध्यक्ष श्री तरुण सुरती; अन्य ट्रस्टी श्री आलोक मिश्र और श्री इंद्रजीत शर्मा, पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष मेजर शेर बहादुर एवं अजय चड्डा, राष्ट्रीय अध्यक्ष, वर्तमान एवं पूर्व राष्ट्रीय व विभिन्न शाखाओं के प्रतिनिधियों के साथ-साथ स्थानीय शाखा के अधिकारी, स्वागत समिति व स्थानीय सदस्यों एवं उत्तर-पूर्व ओहायो के हिंदी और संस्कृति प्रेमियों ने भी भाग लिया।

सम्मेलन का मूल विषय था "नई पीढ़ी, हिंदी और भारतीय संस्कृति, डिजिटल युग में"।

अधिवेशन का सत्रानुसार संक्षिप्त विवरण

सत्र 1 – सांस्कृतिक संध्या (2 मई):

मेडाइना ओहायो के हाइलैंड हाई स्कूल में आयोजित सांस्कृतिक संध्या का उद्घाटन अ.हि.स. के ट्रस्टी चेयर तरुण सूरती, ट्रस्टी आलोक मिश्रा, पूर्व अध्यक्ष मेजर शेर बहादुर सिंह, राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. शैल जैन, होस्ट चैप्टर संयोजक डॉ. राकेश रंजन, अध्यक्ष अश्विनी भारद्वाज और विशेष मेहमान मेडाइना के मेयर डेनिस हैनवेल की गरिमामय उपस्थिति में दीप प्रज्जवलन किया गया।

इस अवसर पर मेजबान शाखा ने एक विशिष्ट और रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसमें 5 वर्ष से लेकर 80 वर्ष तक की आयु के प्रतिभागियों ने भाग लिया। सांस्कृतिक संध्या का संचालन अ.हि.स.की श्रीमती रेनू चड्डा और डॉ. तसनीम लोखंडवाला द्वारा किया गया।

हर प्रस्तुति में भारत के किसी न किसी राज्य को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया। अनेक राज्यों की जानकारी वहाँ के प्रमुख तथ्यों से सजे पोस्टकार्ड के माध्यम से दी गई, जिसे दो उत्कृष्ट मंच संचालिकाओं डॉ. सुनीता द्विवेदी और डॉ. रश्मि चोपड़ा—द्वारा प्रस्तुत किया गया। इसके पश्चात उसी राज्य से संबंधित नृत्य, गीत या कविता के रूप में एक सजीव कलात्मक अभिव्यक्ति की गई। यह संपूर्ण कार्यक्रम भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विविधता और एकता को दर्शाने वाला था।

इस सुहावनी संध्या में भारत की अविश्वसनीय और अद्भुत विविधता और हिंदी भाषा की समृद्धि की एक झलक की अनूठी प्रस्तुति थी। इस अवसर पर रोटरी डिस्ट्रिक्ट 6630 के एक एक्सचेंज छात्र 'काई टोटे' भी उपस्थित थे, जो जुलाई 2025 में एक वर्ष के लिए भारत जाएंगे। वहाँ के स्कूल में शिक्षा लेगें और भारतीय संस्कृति और हिंदी से अवगत होंगें।

सांस्कृतिक कार्यक्रम के अंत में, युवाओं की भागीदारी की सराहना करते हुए सभी प्रतिभागियों को उनकी पसंद की एक-एक हिंदी पुस्तक भेंट की गई (जिसे 8–10 विभिन्न प्रकार की पुस्तकों में से चुना जा सकता था)। यह विशेष उपहार अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति की नॉर्थ ईस्ट ओहायो शाखा की ओर से प्रदान किया गया।

ये विशेष उपहार प्रामाणिक, नैतिक और जीवन मूल्यों का प्रसार करने वाली पुस्तकें भारत के चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित थीं।

बच्चों के साथ-साथ उनके अभिभावक भी नॉर्थ ईस्ट ओहायो शाखा की ओर से प्रदान किए गये इस अनोखे उपहार से बहुत प्रसन्न थे।

सत्र 2 – शैक्षिक संगोष्ठी (3 मई 2025 प्रातः)

हिन्दी शिक्षण और उससे संबंधित विषयों पर केंद्रित यह सत्र रिचफील्ड, ओहायो के 'क्वालिटी इन' में आयोजित हुआ। कार्यक्रम के मंच संचालन की जिम्मेदारी हमारे युवा प्रतिनिधि निकुंज खण्डेलवाल ने निभाई। उन्होंने युवाओं का शानदार प्रतिनिधित्व किया, धाराप्रवाह हिन्दी में बात की और अभी उपस्थित लोगों पर गहरा प्रभाव डाला।

उद्घाटन और दीप प्रज्ज्वलन रिचफील्ड के मेयर माइकल व्हीलर; अ.हि.स. के विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों– आलोक नंदा, टेनेसी; अनिल गुप्ता, इंडियाना; भावना क़ल्याण, ह्यूस्टन; धर्मपाल सिंह, न्यूयॉर्क; चौधरी प्रताप सिंह, वाशिंगटन डी.सी.; अश्विनी भारद्वाज, उत्तर पूर्व ओहायो; अर्चना पांडा, सेन फ्रांसिस्को के साथ किया गया।

पुस्तकों का विमोचन

इस कार्यक्रम में दो पुस्तकों का विमोचन हुआ–

सांस्कृतिक कार्यक्रम की एक सचित्र झलक

1) "कुछ हम भी लिख गए हैं तुम्हारी किताब में गुलाब खंडेलवाल की गजलें" संपादक: ओम निश्चल– इस पुस्तक का विमोचन वाशिंगटन डी सी से पधारीं साहित्यकार आस्था नवल ने किया।

2) साहित्यकार अशोक लव के उपन्यास 'नंदिता अभिनव' का विमोचन समिति के पूर्व अध्यक्ष मेजर शेरबहादुर द्वारा सम्पन्न हुआ।

रिचफील्ड के मेयर, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति के राष्ट्रीय और शाखा के प्रतिनिधियों की रिपोर्ट

रिचफील्ड के मेयर माइकल व्हीलर ने अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति (IHA) के मिशन, संस्कृति और भाषा को बनाए रखने की आवश्यकता, तथा विविधता के समर्थन पर एक संक्षिप्त भाषण दिया। उन्होंने कहा कि रिचफ़ील्ड शहर हमेशा इन मूल्यों का समर्थन करता रहा है और आगे भी करता रहेगा।

अ.हि.स. के ट्रस्टी अध्यक्ष श्री तरुण सुरती ने समिति द्वारा किये गए कार्यक्रम की संक्षिप्त जानकारी के साथ साथ भविष्य के कार्यों की योजनाओं को साझा किया। जिससे उपस्थित जनसमूह को समिति की व्यापक दृष्टि और कार्यों की गहराइयों का परिचय मिला। राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. शैल ने अपने कार्यकाल में प्राप्त की गई उपलब्धियों को बताते हुए सबको भविष्य पर ध्यान देने को प्रेरित किया समिति के उद्देश्यों पर काम करें और युवा पीढ़ी को ज़्यादा जोड़ें। अमेरिका के विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों– सीमा वर्मा, टेनेसी; राकेश कुमार, इंडियाना (वीडियो प्रेजेंटेशन द्वारा); भावना क़ल्याण, ह्यूस्टन; ट्रस्टी इंद्रजीत शर्मा, न्यूयॉर्क; चौधरी प्रताप सिंह, वाशिंगटन डी.सी.; अश्विनी भारद्वाज, उत्तर पूर्व ओहायो ने संचिप्त में अपने राज्यों में शाखा द्वारा किए कार्यक्रमों का विवरण दिया। अलग-अलग तरीकों से एक ध्येय की प्राप्ति के विचारों के बारे में जान कर सब को बहुत ही अच्छा लगा।

शैक्षिक कार्यशाला के 5 प्रस्तुतकर्ता और विषय इस प्रकार हैं–

1. डॉ. आस्था नवल, हिंदी साहित्य और भारतीय संस्कृति: शिक्षक की भूमिका

2. डॉ. राजीव रंजन, शिक्षण/अधिगम सामग्री का डिजिटलीकरण: हिंदी के लिए ओपेन शैक्षिक संसाधन (OER)

3. साधना कुमार, अमेरिका में द्वि भाषी साक्षरता की अपनी पहचान

4. अर्चना पांडा, नई तकनीक और मनोरंजन के साथ हिंदी शिक्षण

5. डॉ. राकेश कुमार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता क्रांति: हिंदी में परिवर्तन, संयुक्त राज्य अमेरिका में।

इस सत्र में विभिन्न विश्वविद्यालयों और राज्यों के विद्वानों द्वारा विषय वस्तु आधारित प्रस्तुतियाँ दी गईं। "डिजिटल युग में हिंदी की दिशा", जिसमें भाषा सीखने के लिए नई प्रौद्योगिकी, भारत सरकार द्वारा कार्य, AI की भूमिका, गूगल और अन्य हिंदी को प्रौद्योगिक रूप से सक्षम बनाने की संभावनाओं पर चर्चा हुई। AI और डिजिटल उपकरणों के युग में हिंदी के उभरते परिदृश्य पर जानकारी दी गई। ये संसाधन हिंदी शिक्षकों, छात्रों और भारतीय संस्कृति के समर्थकों के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। यह सत्र विचारों का मंथन, ज्ञानवर्धक और

AKRON

Proclamation

To The People of Akron:

Whereas: The International Hindi Association (IHA), or "Anterrashtriya Hindi Samiti" established in 1980 in the United States, is dedicated to promoting and preserving the Hindi language and the rich cultural heritage of India through global outreach, literature, and education; and

Whereas: The Northeast Ohio Chapter of IHA will host the prestigious International Biennial Convention on May 2–3, 2025, showcasing the beauty and relevance of Hindi language and Indian culture; and

Whereas: Hindi, the third most spoken language in the world, serves as a bridge between communities, and IHA plays a vital role in fostering cross-cultural understanding through seminars, publications, and youth engagement; and

Whereas: The IHA's mission includes celebrating Indian culture among people of all backgrounds through music, dance, literature, and intergenerational programs, enriching the multicultural fabric of our community.

Now, Therefore: I, Shammas Malik, Mayor of the City of Akron, Ohio, do hereby proclaim the month of May 2025, as:

"International Hindi Awareness Month"

in the City of Akron.

In Witness Whereof: I have hereunto set my hand and caused the Seal of the City of Akron to be affixed hereto this 14th day of April 2025.

Mayor
City of Akron

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association

सम्मान पत्र

डा. शैल जैन

को

अ. हि. स. के २२ वें अधिवेशन, राष्ट्रीय अध्यक्ष काल की सर्वांगीण सफलता एवं मासिक पत्रिका संवाद के प्रकाशन में उत्कृष्ट योगदान हेतु सम्मान-पत्र

संयोजक, २२ वाँ अधिवेशन — अध्यक्ष, उ.पू.शाखा

३ मई २०२५ — एक्रन, ओहायो, संयुक्त राज्य अमेरिका

संवादात्मक रहा, जिसमें व्यावहारिक मार्गदर्शन भी प्रदान किये गये।

सत्र 3 कवि सम्मेलन एवं सम्मान समारोह 3 मई 2025

यह सत्र क्वालिटी इन, मेडाइना, ओहायो में आयोजित हुआ। इस काव्य संध्या में रिचफील्ड के मेयर माइकल व्हीलर और समिट काउंटी की क्लर्क ऑफ़ कोर्ट्स ताविया गोलांस्की ने भाग लिया। दीप प्रज्ज्वलन में मेयर माइकल व्हीलर, समिट काउंटी की क्लर्क ऑफ कोर्ट्स ताविया गोलांस्की, पूर्व ओहायो सेनेटर नीरज अंताणी, अ.हि.स. के ट्रस्टी अध्यक्ष श्री तरुण सुरती, अ.हि.स. के ट्रस्टी इंद्रजीत शर्मा, अ.हि.स. के पूर्व अध्यक्ष अजय चड्डा, अ.हि.स. की वर्तमान अध्यक्ष डॉ. शैल जैन, उत्तर पूर्व शाखा की पहली अध्यक्ष विमल शरण और उत्तर पूर्व शाखा की सहयोगी और मेजर डोनर अर्चना अग्रवाल थीं। कई राज्यों से आए प्रतिनिधि एवं स्थानीय हिंदी और संस्कृति प्रेमी उपस्थित थे।

सम्मान समारोह

कवि सम्मेलन के साथ ही लंबे अरसे से अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति के माध्यम से हिन्दी और भारतीय संस्कृति के लिए निःस्वार्थ और समर्पित सहयोग देने वाले कार्यकर्त्ताओं का सम्मान-समारोह आयोजित किया गया।

कार्यक्रम में विशेष कार्यकर्ताओं को जो अ.हि.स. के उद्देश्य के लिए लंबे अरसे से समर्पित हैं या वर्तमान अधिवेशन की सफलता के

लिए कठिन परिश्रम किया, उन्हें सम्मानित कर विशेष सेवा पट्टिका प्रदान की गई।इस अवसर पर जिन विशिष्ट, गणमान्य व्यक्तियों को सम्मानित किया गया उनमें क्रमशः श्रीमती अंजू कपूर, डॉ. आनंद खंडेलवाल, श्री अश्विनी भारद्वाज, श्री पवन खेतान, श्रीमती किरण गोयल, डॉ. राकेश रंजन, डॉ. थानमल जैन, श्री तरुण सुरती, श्री धर्मपाल सिंह, डॉ. प्रकाश चंद, श्री रमेश जोशी, श्री राकेश कुमार, श्रीमती ऋचा माथुर तथा डॉ. शैल जैन शामिल हैं।

समिति और अधिवेशन आयोजन समिति इनके योगदान, निष्ठा और प्रतिबद्धता प्रति आभार व्यक्त करती है।

काव्य संध्या :

इस अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन में तीन प्रतिष्ठित कवियों—श्री इंद्र अवस्थी (पोर्टलैंड), अर्चना पांडा (सैन फ्रांसिस्को), और अभिनव शुक्ला (सीएटल)—ने हास्य, राजनीतिक टिप्पणी, लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय जैसे विषयों पर आधारित कविताएँ प्रस्तुत कीं, जो श्रोताओं को गहराई तक प्रभावित कर गईं। यह अनूठा अनुभव चुपके से यह बात कह गया कि हिंदी कविता हमारे दिलों में क्यों एक शाश्वत स्थान रखती है।

कवियों की प्रभावशाली कविताओं ने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया।संपूर्ण प्रस्तुति के दौरान सभागार तालियों से गूंजता रहा और सभी ने इस संगीतमय व साहित्यिक संध्या का भरपूर आनंद लिया। यह एक सच्चे अर्थों में रस और आनंद से परिपूर्ण शाम रही।

श्रोताओं के लिए यह एक स्मरणीय अनुभव रहेगा।

समापन समारोह :

इस अधिवेशन में अ.हि.स की अमेरिका की शाखाओं और आउटरीच राज्यों की सक्रिय भागीदारी रही, जिनमें बोस्टन, मैसाचुसेट्स; नैशविल, टेनेसी; वॉशिंगटन डी.सी; इंडियाना; न्यूयॉर्क; ह्यूस्टन और उत्तर-पूर्व ओहायो के प्रतिनिधि शामिल थे। अ.हि.स की राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. शैल जैन (2024–25) ने संगठन की उपलब्धियों पर संतोष व्यक्त किया और भविष्य में इस दिशा में कार्य करने पर बल दिया: "हमारी शाखाओं और राष्ट्रीय टीम ने बहुत कुछ हासिल किया है, लेकिन हमें और मेहनत करनी होगी ताकि हिंदी को अमेरिकी स्कूलों में दूसरी भाषा के रूप में मान्यता मिल सके। हमें अपनी भाषा और सांस्कृतिक विरासत को अगली पीढ़ी तक पहुँचाना होगा, अपने बच्चों से मातृभाषा में संवाद करना होगा, और विविधता का सम्मान करते हुए अपने संस्कार साझा करने होंगे।" अधिवेशन का सफल आयोजन अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति का हिंदी भाषा के प्रचार, प्रसार के प्रति योगदान और कर्मठता दर्शाता है। लेकिन तालियों की गड़गड़ाहट के पीछे एक कोमल प्रतिध्वनि छिपी है– एक अनुस्मारक कि भले ही हमारी जड़ें गहरी हों, उन्हें सींचना ज़रूरी है। आज की तीव्र गति से दौड़ती दुनिया में, हमें अपने आप से पूछना चाहिए: क्या हम हिंदी को सिर्फ़ कामकाज में ही नहीं, बल्कि भावना में भी ज़िंदा रख सकते हैं? क्या अगली पीढ़ी को एक जीवंत भाषा विरासत में मिलेगी या सिर्फ़ एक पुरानी याद?

भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि हम हिंदी के प्रचार और प्रसार के लिए क्या कदम उठा रहे हैं। हिंदी सिर्फ़ एक भाषा नहीं है। वो एक गीत है, एक कहानी है, एक आत्मा है, हमारी पहचान है और हमारी संस्कृति है– इसलिए इस धरोहर को भावी पीढ़ी के लिए संजो कर रखना हमारा कर्त्तव्य है।

पदाधिकारियों की विशेष बैठक/ समापन/विदाई समारोह (4 मई, प्रातः)

यह संगोष्ठी राष्ट्रीय, शाखा और उत्तर पूर्व शाखा के अधिकारियों, स्वयंसेवक और प्रतिनिधियों के बीच थी। संगोष्ठी में तरुण सुरती, आलोक मिश्रा, इंद्रजीत शर्मा, मेजर शेर बहादुर सिंह, डॉ. शैल जैन, राकेश कुमार, विद्या सिंह, डॉ देवव्रत सिंह, धर्मपाल सिंह, डॉ राकेश रंजन, डॉ. प्रकाश चाँद, डॉ. थानमल जैन, किरण गोयल, किरण खेतान, डॉ. सोमनाथ राय, अश्विनी भारद्वाज और अंजू शर्मा एवं ऑन लाइन रमेश जोशी जी भी शामिल थे क्योंकि वे कुछ आकस्मिक कारणों से भारत से नहीं आ पाये। अधिवेशन के आयोजन की सफलता, दिक्कतें, आगे के लिए करणीय और योजनाओं आदि सभी विषयों पर विस्तार से बातचीत हुई।

उपस्थित सभी अधिवेशन की सफलता पर प्रसन्न थे। ब्रंच के बाद सभी अपने शहरों के लिए प्रस्थान कर गए।

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति का 22वाँ द्विवार्षिक अधिवेशन भाषा, विरासत और सांस्कृतिक एकता का एक सजीव उत्सव रहा, जिसमें सभी आयु वर्गों की भागीदारी रही और अगली पीढ़ी के लिए दिशा तय करने के माध्यम पर विचारों का मंथन भी हुआ।

रिपोर्टिंग टीम– अनीता गुप्ता (इंडियाना), अनिल गुप्ता (इंडियाना), डॉ. शोभा खंडेलवाल (उत्तर-पूर्व ओहायो)), सीमा वर्मा (टेनेसी), प्रेरणा शर्मा (टेनेसी), डॉ. तसनीम लोखंडवाला (उत्तर-पूर्व ओहायो), डॉ. सुनीता द्विवेदी (उत्तर-पूर्व ओहायो), डॉ. रश्मि चोपड़ा (उत्तर-पूर्व ओहायो), किरण खेतान (उत्तर-पूर्व ओहायो), डॉ. शैल जैन।

इस अंक के आवरण पृष्ठ

प्रेम के कई सोपान होते हैं। जिज्ञासा, जानकारी, दर्शन, आनंद, संबंध और अंततः प्रेम। कोई भी उत्सव इन सबका संगम होता है। उत्तर पूर्व ओहायो शाखा के आतिथ्य में आयोजित समिति का 22 वाँ द्विवार्षिक अधिवेशन भी ऐसा ही एक उत्सव था। जिन्होंने देखा उन्होंने पूरा आनंद लिया और कहीं न कहीं संबंधों की दृढ़ता को भी अनुभव कर रहे होंगे। लेकिन जो नहीं शामिल हो सके उनके लिए शब्द ही एक मात्र सहारा जो कार्यक्रम की संक्षिप्त रिपोर्ट में है। फिर भी इस उत्सव की भव्यता, सुंदरता और उल्लास को हमने चित्रों में भी सँजोया है जिनसे इस अंक का आवरण पृष्ठ सजे हैं। इनसे जुड़ें और अपनी कल्पना में इन्हें साक्षात करें।

अपने तरीके से देशभक्ति की फिल्में बनाने वाले निर्माता, निर्देशक और प्रसिद्ध अभिनेता मनोज कुमार का 87 वर्ष आयु में निधन

उमराव जान की नृत्यनिर्देशक और प्रसिद्ध प्रयोगधर्मी कथक नृत्यांगना पद्मविभूषण कुमुदिनी लाखिया का 95 वर्ष की आयु में निधन

अपने तरीके से प्रेमचंद का मूल्यांकन करने वाले समालोचक के रूप में ख्यात, विश्वा से जुड़े रहे डॉ. कमल किशोर गोयनका का 86 वर्ष की आयु में निधन।

न्यूयॉर्क शाखा के पूर्व अध्यक्ष और समिति के निर्देशक मण्डल में रहे, समिति के वरिष्ठ सदस्य श्री राजेन्द्र मिश्र का 77 वर्ष की आयु में न्यूयॉर्क में निधन।समिति की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि।

ऋग्वेद की ऋचाओं के हिन्दी पद्यानुवाद के लिए विख्यात और सम्मानित तथा बेहतरीन शायर और गद्यलेखक बशीर अहमद मयूख का 99 वर्ष की आयु में कोटा में निधन।उनका बनवाया मयूखेश्वर महादेव मंदिर उदार और वैचारिक लोगों के लिए कोटा में एक प्रिय अड्डा रहा है।

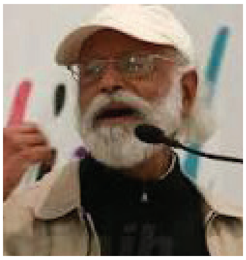

विभाजन पूर्व पाकिस्तान से अमृतसर में आ बसे, आजाद हिन्द फौज से जुड़े परिवार से ताल्लुक रखने वाले, पिछले पाँच दशक कनाडा में रह रहे, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और अंग्रेजी में लिखते रहने वाले कुलवन्त सिंह नदीम परमार विश्वा में छपे अपने संस्मरणों और ग़ज़लों के कारण विश्वा के पाठकों के लिए नए नहीं हैं।उनका 89 वर्ष की आयु में वेंकूवर में निधन हो गया।विश्वा की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि।

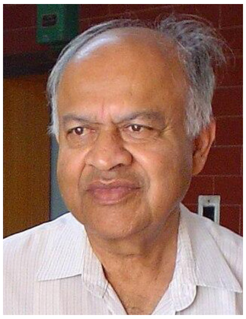

गणितज्ञ पिता और संस्कृत विदुषी माता की संतान और स्वयं एक विख्यात खगोल भौतिकविद, पद्मभूषण जयंत विष्णु नार्लीकर जो कभी अपने बिग बैंग थ्योरी सिद्धांत के कारण नोबेल के निकट तक पहुँचे थे, का 86 वर्ष की आयु में निधन।उन्होंने विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए बहुत काम किया। उनकी मराठी आत्मकथा "चार नगरातले माझे विश्व" के लिए 2014 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

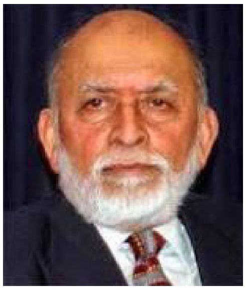

होमी भाभा के साथ भारत के परमाणु कार्यक्रम को सँभालने वाले विशिष्ट वैज्ञानिक एम आर श्रीनिवासन का 95 वर्ष की आयु में निधन।

श्रद्धांजलि और सलाम

भारतीयता सच्चा शाह

पहलगाँव आतंकवादी हमले में हिन्दू पर्यटकों को बचाने के लिए आतंकवादियों से बंदूक छीनने की कोशिश में अपनी जान गँवाने वाले 30 वर्षीय सैयद आदिल हुसैन शाह को इंसानियत में विश्वास रखने वाले सभी की ओर से सलाम।

आमने-सामने युद्ध में तो फिर भी अपनी जान बचाने के लिए सामने वाले को किसी भी तरह मारना जरूरी हो जाता है लेकिन किसी निर्दोष की जान बचाने के लिए अपनी जान की परवाह न करना सबसे बड़ी वीरता और शहादत है।

'भारत नहीं स्थान का वाचक गुण विशेष नर का है'– दिनकर।

सज्जाद अहमद भट्ट

आतंकी कार्यवाही में घायल बच्चे को पीठ पर लादकर दौड़ते हुए सुरक्षित स्थान पहुँचाने वाला एक शानदार इंसान

इंसान की पहचान धर्म-जाति से करने वाली छोटी और घातक सोच को निरुत्तर कर देने वाला एक माकूल जवाब।

भारत की अवधारणा कागजों, भाषणों और कूटनीति में नहीं, इन्हीं इंसानी मूल्यों में प्रतिष्ठित है।

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति द्वारा आयोजित 22वें अधिवेशन की झलकियाँ

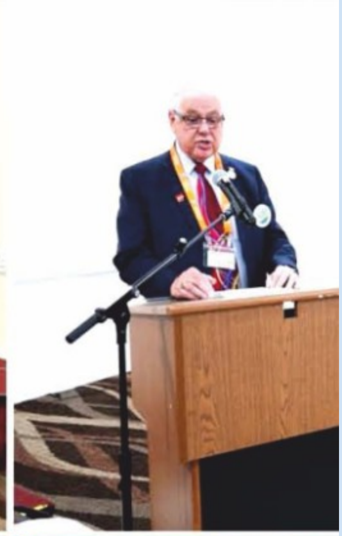
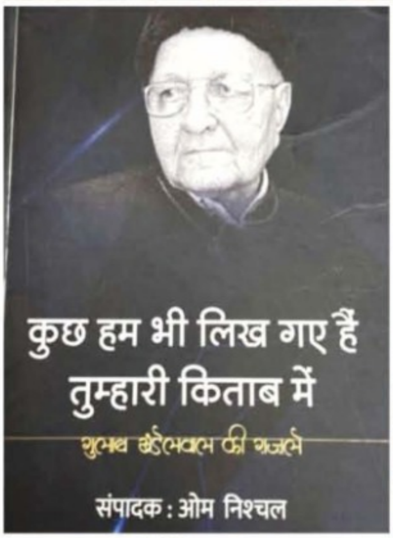

PRINTED VISHWA - ISSN 25721550
ONLINE e-VISHWA - ISSN 25721569

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति द्वारा आयोजित 22वें अधिवेशन की झलकियाँ